श्रीमद्भगवद्गीता

संकलन एवं अनुवाद

परमहंस योगिराज आचार्य स्वामी बालकृष्णानन्द 'मुक्तबुद्ध'

श्रीमद्भगवद्गीता

रचयिता तथा संकलन एवं अनुवाद

परमहंस आचार्य योगिराज स्वामी बालकृष्णानन्द "मुक्तबुद्ध"

जय गुरुदेव

प्रकाशक
चक्र
परमहंस योग सेवा
दिव्य सत्सङ्ग धाम
रामनगर, चक्र चोक ललितपुर -३
सम्पर्क :- ५५२१५०८

प्रथम संस्करण: २००० प्रति

वि.सं:२०६६ कार्तिक १४ गते

सहयोगार्थ रु :

कम्प्युटर डिजाईन तथा छपाई
टंकेश्वर प्रिन्टिङ् प्रेस,
नखिपोट
फोन नं : ९८४१३०१८३१

मन्तव्य

"योग: कार्यकौशलम्" अर्थात योगले कार्यकुशलता बढाउँछ । कार्यकुशलता कुन क्षेत्रमा आवश्यक छैन ? प्रशासक होस् या शासक , शिक्षक होस् या रक्षक , प्राविधिक होस् या आध्यात्मिक जुनसुकै विधामा पनि कौशलता अति नै आवश्यक तत्त्व हो । त्यो कौशलता भने योगबाट नै सम्भव छ र योग गीता प्रदत्त साधन हो । श्रीमद्भगवद्गीता सामान्य उपदेश मात्र नभइ यो स्वयं ब्रह्मस्फूरित ब्रह्म बाक्य योगेश्वर श्रीकृष्णको माध्यमबाट प्रकटमा आएको हो । "ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म" अर्थात गीताका प्रत्येक अक्षर एकाक्षररूप ब्रह्म हुन् । यसका हरेक अक्षर अक्षर, शब्द शब्द मन्त्रतुल्य छन् । चिन्तन, मनन र स्मरण योग्य छन् । गीतालाई पूजाकोठामा राखेर पूजापाठ गरेर मात्र पुग्दैन, प्रवचन व्याख्ख्यान गरेर मात्र पुग्दैन र गीताका कुरा जानेर या ज्ञान गरेर मात्र पनि पुग्दैन । यसलाई हृदयमै धारण गरेर विधि व्यवहारमा लागू गर्नुपर्दछ तब मात्र गीतापाठ, गीताज्ञान प्राप्ति सार्थक हुन्छ ।

गीताज्ञानको महत्त्व र आवश्यकता हिजो जति थियो त्यो भन्दा बढि आज छ र भोली अझ बढ्नेछ । नैतिकता र ईमान्दारिताले ओरालो लागेको आजको समयमा गीताज्ञानको महत्त्व अझ बढ्न गएको छ । यदि गीताज्ञानलाई जस्ताको तस्तै व्यवहारमा लागू गर्ने हो भने समाजमा विकृति, अन्याय, अत्याचार र बलत्कार जस्ता प्रवृत्ति बढ्ने थिएनन्, मान्छे मान्छेसँग डराउनु पर्ने थिएन । सभ्यता र आधुनिकताको नाममा मनुष्यले आज मनुष्यत्व गुमाउने थिएन, मानव मर्यादाको सीमा नाघ्ने थिएन । आज मानवजातिमा भय, त्रास, अशान्ति र तनाव व्याप्त छ । काम, क्रोध र हिंसाले स्थिति

भयावह छ । यस्तो स्थितिलाई शीतलता प्रदान गर्ने एकमात्र उपाय भनेको योग हो र योग गीताबाट सम्भव छ । गीताज्ञान व्यक्ति व्यक्तिलाई आवश्यक छ, घर घरमा गीताको पुस्तक हुन नितान्त जरूरी छ । यहि कुरालाई हृदयंगम गरि संस्कृत श्लोक सहितको नेपाली भाषामा अनुवादित गीताको अभाव महशुस भईरहेको आजको परिप्रेक्षमा मैले श्रीमद्‌भगवद्‌गीतालाई नेपाली सरल भाषामा अनुवाद गरि प्रकाशनमा ल्याएको छु । यसै पुस्तकमा मैले रचना गरेको गुरूमण्डल भजन र सच्चिदानन्द भजन पनि समावेश गर्न सान्दर्भिक ठानेका छु ।

गुरूमण्डल भजन भजन मात्र नभई प्रत्येक शव्द-शव्द मन्त्रमय रहेको एक अद्वितीय गुरूस्तोत्र समेत भएको हुँदा प्रत्येक दिन नित्त्यकर्मको समयमा यो स्तोत्रको विशुद्ध प्रार्थनाले मात्र पनि ईश्वरीय कृपा प्राप्त गर्न सकिने हुँदा प्रत्येक पाठक र साधकले यस तर्फ पनि विशेष ध्यान दिनु बुद्धिमानी ठहरिने छ । यसैगरि यस पुस्तकमा समावेश गरिएका "विष्णु सहस्रनाम" र "गजेन्द्र मोक्ष" स्तोत्रको नित्य प्रार्थना र पाठ पितृ उद्धारको लागि सहज र बिशेष महत्त्वपूर्ण साधनाको रूपमा रहेको छ ।

समग्रमा आत्माज्ञान एवं ब्रह्मज्ञान र पितृ उद्धारको लागि समेत ध्यानमा राखी प्रस्तुत गरिएको यस पुस्तकले सम्पूर्ण सनातनधर्म प्रेमीजनलाई यथायोग्य सहयोग पुऱ्याउने कुरामा म विश्वस्त रहेको छु ।

सम्पूर्ण पाठ, प्रार्थनाको लागि समयाभाव भएमा पनि "सच्चिदानन्द र गुरूस्तोत्र" वा "गीता" वा "विष्णु सहस्रनाम र गजेन्द्र मोक्ष" को पाठ प्रार्थना मात्रले पनि सो अनुसार प्रभू कृपा प्राप्त हुने नै छ ।

अतः घर-घरमा प्रस्तुत ग्रन्थको पाठ प्रार्थना होस् र सबैको कल्याण होस् भन्ने शुभकामना व्यक्त गर्दै आफ्नो मन्तव्य यहीं टुङ्ग्याउँछु ।

प्रकाशनको क्रममा सहयोग गर्ने सम्पूर्ण साधकवर्गलाई धन्यवाद एवं आशिर्वाद प्रदान गर्दछु ।

।। हरि ॐ शिव ।।

-स्वामी बालकृष्णानन्द "मुक्तबुद्ध"

दिव्य सत्संगधाम
रामनगर, चक्रचोक, ल.पु. -३

सच्चिदानन्द भजन

सच्चिदानन्द सच्चिदानन्द सच्चिदानन्द ॐ
ॐ तत्सत ॐ तत्सत् ॐ तत्सत् ॐ

ॐ शक्ति ॐ शक्ति ॐ शक्ति ॐ
ॐ आदिशक्ति सर्वशक्ति परमशक्ति ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।१।

ॐ सत्य ॐ सत्य ॐ सत्य ॐ
परंब्रम्ह परमधाम परंपवित्र ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।२।

ॐ नित्य ॐ नित्य ॐ नित्य ॐ
परमअक्षर पूर्णब्रम्ह अविनाशी ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।३।

ॐ आत्मा ॐ आत्मा ॐ आत्मा ॐ
अलख अगम अगोचर अनामिरुप ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।४।

ॐ हंस ॐ हंस ॐ हंस ॐ
सर्वरुप सर्वव्यापक सर्वसत्य ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।५।

ॐ सोऽहं ॐ सोऽहं ॐ सोऽह ॐ
नादबिन्दु कलारुप कलातित ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।६।

ॐ नाथ ॐ नाथ ॐ नाथ ॐ
बज्रसत्व तथागत परमशिव ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।७।

ॐ हरि ॐ हरि ॐ हरि ॐ
नैरात्मा नित्यतृप्त ज्ञानमुर्ति ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।८।

ॐ राम ॐ राम ॐ राम ॐ
चैतन्यरुप सनातन पुरुषोत्तम ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।९।

ॐ कृष्ण ॐ कृष्ण ॐ कृष्ण ॐ
रसरुप रससागर रसेश्वर ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।१०।

ॐ मष्ट ॐ मष्ट ॐ मष्ट ॐ
कलाशक्ति कलातत्व कलाब्रम्ह ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।११।

ॐ रुद्र ॐ रुद्र ॐ रुद्र ॐ
महाकाल महादेव चिन्मय ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।१२।

ॐ शुद्ध ॐ शुद्ध ॐ शुद्ध ॐ
अनन्तरुप अलिप्ततत्व नित्यआत्मा ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।१३।

ॐ बुद्ध ॐ बुद्ध ॐ बुद्ध ॐ
विश्वरुप अन्तरात्मा परमात्मा ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।१४।

ॐ मुक्त ॐ मुक्त ॐ मुक्त ॐ
बोधरुप अव्यक्तात्मा निरञ्जन ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।१५।

ॐ शिव ॐ शिव ॐ शिव ॐ
निर्लेपरुप निर्विकार सर्वज्ञत्व ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।१६।

ॐ लिङ्ग ॐ लिङ्ग ॐ लिङ्ग ॐ
महालिङ्ग ईतरलिङ्ग स्वयम्भुलिङ्ग ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।१७।

ॐ ईश्वर ॐ ईश्वर ॐ ईश्वर ॐ
अव्यक्तरुप निर्विकल्प चिदानन्द ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।१८।

ॐ ब्रह्म ॐ ब्रह्म ॐ ब्रह्म ॐ
ज्योतिरुप स्वयंप्रकाश निर्वाणब्रह्म ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।१९।

ॐ पूर्ण ॐ पूर्ण ॐ पूर्ण ॐ
सर्वतत्व महाशून्य पूर्णब्रह्म ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।२०।

ॐ गुरु ॐ गुरु ॐ गुरु ॐ
गुरुनाथ गुरुतत्व गुरुब्रह्म ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।२१।

ॐ शान्ति ॐ शान्ति ॐ शान्ति ॐ
बालकृष्ण मुक्तबुद्ध सच्चिदानन्द ॐ
सच्चिदानन्द .... ॐ ।२२।

ईति श्री वालकृष्णानन्द "मुक्तबुद्ध" कृत सच्चिदानन्द भजन स्तोत्र सम्पूर्णम् !

गुरु मण्डल भजन

शिव ॐ शिव ॐ शिव ॐ शिव ॐ
गुरु ॐ गुरु ॐ गुरु ॐ गुरु ॐ

ॐ तत्सत परमेश्वर शिव ॐ शिव ॐ
ॐ तत्सत परमेश्वर गुरु ॐ गुरु ॐ

निरञ्जन निराकार शिव ॐ शिव ॐ
निरञ्जन निराकार गुरु ॐ गुरु ॐ

परमब्रह्म परमधाम शिव ॐ शिव ॐ
परमब्रह्म परमधाम गुरु ॐ गुरु ॐ

सर्वशक्ति ब्रह्मशक्ति शिव ॐ शिव ॐ
सर्वशक्ति ब्रह्मशक्ति गुरु ॐ गुरु ॐ

हिरण्यगर्भ तथागत शिव ॐ शिव ॐ
हिरण्यगर्भ तथागत गुरु ॐ गुरु ॐ

नित्यआत्मा परमात्मा शिव ॐ शिव ॐ
नित्यआत्मा परमात्मा गुरु ॐ गुरु ॐ

आत्माराम अन्तरआत्मा शिव ॐ शिव ॐ
आत्माराम अन्तरआत्मा गुरु ॐ गुरु ॐ

परमअक्षर पुरुषोत्तम शिव ॐ शिव ॐ
परमअक्षर पुरुषोत्तम गुरु ॐ गुरु ॐ

हंस सो ऽ हं स्वयंप्रकाश शिव ॐ शिव ॐ
हंस सो ऽ हं स्वयंप्रकाश गुरुॐ गुरु ॐ

परमशिव निर्वाणब्रह्म शिव ॐशिव ॐ
परमशिव निर्वाणब्रह्म गुरु ॐगुरु ॐ

महाषोडा महाशिव शिव ॐ शिव ॐ
महाषोडा महाशिव गुरुॐ गुरु ॐ

सोमनाथ आनन्दमुर्ति शिव ॐ शिव ॐ
सोमनाथ आनन्दमुर्ति गुरु ॐगुरु ॐ

महाकाल कामेश्वर शिव ॐशिव ॐ
महाकाल कामेश्वर गुरु ॐगुरु ॐ

अक्षेभ्य महाबुध्द शिव ॐशिव ॐ
अक्षेभ्य महाबुध्द गुरु ॐगुरु ॐ

ब्रह्मलिङ्ग ज्यातीलिङ्ग शिव ॐशिव ॐ
ब्रह्मलिङ्ग ज्यातीलिङ्ग गुरु ॐगुरु ॐ

ब्रज्रसत्व ज्ञानमूर्ति शिव ॐशिव ॐ
बज्रसत्व ज्ञानमूर्ति गुरु ॐगुरु ॐ

आदिशिव दक्षिण मूर्ति शिव ॐशिव ॐ
आदिशिव दक्षिण मूर्ति गुरु ॐ गुरु ॐ

ॐकारेश्वर इतरलिङ्ग शिव ॐ शिव ॐ
ॐकारेश्वर इतरलिङ्ग गुरु ॐ गुरु ॐ

परनाथ विंश्वनाथ शिव ॐ शिव ॐ
परनाथ विश्वनाथ गुरु ॐ गुरु ॐ

शब्दब्रह्म चिदाकाश शिव ॐ शिव ॐ
शब्दब्रह्म चिदाकाश गुरु ॐ गुरु ॐ

ईशानरुप सदाशिव शिव ॐ शिव ॐ
ईशानरुप सदाशिव गुरु ॐ गुरु ॐ

महाजीव महाईश्वर शिव ॐ शिव ॐ
महाजीव महाईश्वर गुरु ॐ गुरु ॐ

दाह्रेमष्ट बामदेव शिव ॐ शिव ॐ
दाह्रेमष्ट बामदेव गुरु ॐ गुरु ॐ

पशुपति महालिङ्ग शिव ॐ शिव ॐ
पशुपति महालिङ्ग गुरु ॐ गुरु ॐ

आदिनाथ महारुद्र शिव ॐ शिव ॐ
आदिनाथ महारुद्र गुरु ॐ गुरु ॐ

मृत्यञ्जय महादेव शिव ॐ शिव ॐ
मृत्यञ्जय महादेव गुरु ॐ गुरु ॐ

वीरभद्र सर्वेश्वर शिव ॐ शिव ॐ
वीरभद्र सर्वेश्वर गुरु ॐ गुरु ॐ

महाविष्णु सद्योजात शिव ॐ शिव ॐ
महाविष्णु सद्योजात गुरु ॐ गुरु ॐ

दत्तात्रेय रामकृष्ण शिव ॐ शिव ॐ
दत्तात्रेय रामकृष्ण गुरु ॐ गुरु ॐ

महाब्रह्म तत्पुरुष शिव ॐ शिव ॐ
महाब्रह्म तत्पुरुष गुरु ॐ गुरु ॐ

सूर्यदेव गणपति शिव ॐ शिव ॐ
सूर्यदेव गणपति गुरु ॐ गुरु ॐ
सद्गुरु परमगुरु शिव ॐ शिव ॐ
सद्गुरु परमगुरु गुरु ॐ गुरु ॐ

धर्मगुरु नारायण शिव ॐ शिव ॐ
धर्मगुरु नारायण गुरु ॐ गुरु ॐ

परमहंस योगिराज शिव ॐ शिव ॐ
परमहंस योगिराज गुरु ॐ गुरु ॐ

मुक्तबुद्ध बालकृष्ण शिव ॐ शिव ॐ
मुक्तबुद्ध बालकृष्ण गुरु ॐ गुरु ॐ

ईति श्री बालकृष्णानन्द "मुक्तबुद्ध" कृत गुरु मण्डल भजन स्तोत्र सम्पूर्णम् ।

॥ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीमद्भगवत्गीतामहात्म्यम्

गीताशास्त्रमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतः पुमान ।
विष्णोः पदमवाप्नोति भयशोकादिवर्जितः ॥१॥
गीताध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्य च ।
नैव शान्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च ॥२॥
मलनिर्मोचनं पुंसां जलस्नानं दिने दिने ।
सकृद्गीताम्भसि स्नानं संसारमलनाशनम् ॥३॥
गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिः सृता ॥४॥
भरतामृतसर्वस्वं विष्णोर्वक्त्राद्विनिः सृतम् ।
गीतागङ्गोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥५॥
सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥६॥

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतामेको देवो देवकीपुत्र एव ।
एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा ॥

करन्यास

ॐ अस्य श्रीभगवद्गीतामालामंत्रस्य श्रीभगवान् वेदव्यास ऋषिः । अनुष्टुप्छन्दः । श्रीकृष्णः परमात्मा देवता । अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे इति बीजम् ॥ सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रजेतिशक्तिः ॥ अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुच इति कीलकम् । नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावक इत्यङ्गुष्ठाभ्यां नमः ॥ न चैनं क्लेदयन्त्यापोनशोषयतिमारुतइति- तर्जनीभ्यां नमः ॥ अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्यो शोष्य एव चेति मध्यमाभ्यां नमः ॥ नित्यं सर्वगतः स्थाणु रचलोऽयं सनातन इत्यनामिकाभ्यां नमः ॥ पश्य मे पार्थ रुपाणि शतशोऽथ सहस्रश इति कनिष्ठकाभ्यां नमः । नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि चेति करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

॥ इति करन्यासः ॥

हृदयादिन्यासः

नैनं छिन्दन्ति शास्त्राणि नैनं दहति पावक इति हृदयाय नमः ॥ न चैनं क्लेदयन्त्यापो नशोषयतिमारुत इतिशिरसे स्वाहा ॥ अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव चेति शिखायै वषट् ॥ नित्यं सर्वगतःस्थाणु रचलोऽयं सनातन इति कवचाय हुम् ॥ पश्य मे पार्थ रुपाणि शतशोऽथ सहस्त्रश इति नेत्रत्रयाय वौषट् ॥ नानाविधानि दिव्यानि नानवर्णाकृतीनि चेति अस्त्राय फट् ॥

॥ इति न्यासं कृत्वा ॥

ध्यानम्

ॐ पार्थाय प्रतिबोधितां भगवता नारायणेन स्वयं
व्यासेन ग्रथितांपुराणमुनिनामध्ये महाभारते ।
अद्वैतामृतवर्षिणींभगवतीमष्टादशाध्ययिनी-
मंबत्वामनुसंदधामिभगवद्गातेभवद्वेषिणीम् ॥१॥

नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ।
येन त्वया भारत तैलपूर्णः प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः ॥२॥

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सःसुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥३॥

प्रपन्नपारिजाताय तोत्त्रवेत्रैकपाणये ।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीताऽमृतदुहे नमः ॥४॥

वासुदेव सुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् ।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥५॥

भीष्मद्रोणतटाजयद्रथजलागान्धारनीलोत्पला
शल्यग्राहवती कृपेण वहनी कर्णेन बेलाकुला ।
अश्वत्थामविकर्णघोरमकरा दुर्योधनावर्तिनी
सोत्तीर्णाखलुपाण्डवैरणनदीकैवर्तकःकेशवः ॥६॥

पराशर्यवचः सरोजममलं गीतार्थगन्धोत्कटं
नानाख्यानककेसरं हरिकथासम्बोधनाबोधितम् ।
लोके सज्जनषट्पदैरहरहः पेपीयमानं मुदा
भूयाद्भारतपंकजंकलिमलप्रध्वंसिनः श्रेयसे ॥७॥
मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥८॥

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं ।
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ॥
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्य ।
वन्दे विष्णु भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥९॥

यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतःस्तुन्वन्ति दिव्यैस्तवै-
वेदैःसाङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं
योगिनोयस्यान्तंनविदुःसुरासुरगणादेवायतस्मैनमः ॥१०॥

ॐ

परमात्मने नमः

श्रीमद्भगवद्गीता

प्रथमो अध्यायः

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय॥१॥

भा.टी.-सञ्जयसँग धृतराष्ट्र सोद्धछन् हे सञ्जय ! धर्मभूमि कुरुक्षेत्रमा जम्मा भएर युद्धको ईच्छा गर्ने भएका मेरा र पाण्डुका पुत्रहरुले के गरे ?

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥२॥

भा.टी.-महाराज धृतराष्ट्रका यस्ता वचन सुनेर सञ्जय विन्ति गर्छन् कि हे महाराज ! त्यसबेला राजा दुर्योधनले व्यूह रचना गरेका पाण्डवका सेनालाई देखेर आफ्ना गुरु द्रोणाचार्यका पासमा गएर यो वचन भन्दा भए ।

पश्यैतां. पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥३॥

भा.टी.-हे आचार्य ! हे गुरु ! तपाईका बुद्धिमान् शिष्य द्रुपदका छोरा धृष्टद्युम्नले रचेको व्यूह अर्थात् खडा गराएका ति पाण्डवका बडा भारी सेनासमूहलाई हेर्नुहवस् ।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥४॥

भा.टी.-फेरी यी सेनाका बीचमा बडा बडा धनुषधारी युद्ध गर्न आएका भीमसेन र अर्जुनसमान लडाईमा धेरै शूरवीरहरु उपस्थित भएका छन् (जस्तै सात्यकी , विराट र महारथी राजा द्रुपद भए) ।

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैव्यश्च नरपुङ्गवः ॥५॥

भा.टी.-फेरी धृष्टकेतु भए , चेकितान भए , बलवान् काशिराज भये, पुरुजित् , कुन्तिभोज , मनुष्यमा श्रेष्ठ भएका शैव्य यी सम्पूर्ण राजाहरु अत्यन्तै बलवान् छन् ।

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥६॥

भा.टी.-अनि फेरि त्यस्तै पराकमी युधामन्यु र बलवान् उत्तमौजा सौभद्र(सुभद्रका छोरा अभिमन्यु) र द्रोपदीका पाँचै पुत्र यी सम्पूर्ण वीरहरु महारथी छन् ।

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥७॥

भा.टी.-हे ब्राह्मणमा श्रेष्ठ ! हे गुरु ! हामीतर्फ पनि जो २ बलवान् बीरहरु छन् , ति सबै तपाईले सम्भनु होस् । तपाईलाई जनाउन मेरा सेनापति बीरहरु जो जो छन् तिनको नाम पनि भन्छु ।

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥८॥

भा.टी.-तपाई अनि पितामह भीष्म र कर्ण फेरि संग्राम विजयी कृपाचार्य उस्तै वीर अश्वत्थामा, विकर्ण र सोमदत्तका छोरा (भूरिश्रवा) ।

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥९॥

भा.टी.-फेरी अरु पनि धेरैनै शुरवीर अनेक प्रकारका शस्त्र अस्त्रादिले युक्त भएर मेरा निमित्त आफ्ना जीवनको आशा नै छोडेका सबै जना युद्ध गर्नमा अत्यन्त सिपालु छन् ।

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥१०॥

भा.टी.-भीष्मपितामहले रक्षा गरिएका हाम्रा ति सेनासमूह असंख्य छन् । अरु भीमद्वारा रक्षित उनिहरुका सेना अत्यन्त थोरै छन् ।

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥११॥

भा.टी.-तपाईहरुले सबैजना जम्मा भै लडाईका स्थानमा उभिएर (आफ्ना आफ्ना जग्गामा स्थिर रहेर) अवश्य पनि भीष्मपितामहलाई सर्व प्रकारबाट रक्षा गर्नुपर्छ ।

तस्य संजनयन् हर्ष कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंङ्खं दध्मौप्रतापवान् ॥१२॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारसँग द्रोणाचार्यलाई भन्ने भएका दुर्योधनका वचन सुनेर कौरव कूलमा वृद्ध र अत्यन्त प्रतापी पितामह भीष्मले ति राजा दुर्योधनको हृदयलाई हर्ष गराएर उच्च स्वर गरी सिंहनदका समान अर्थात सिंह गर्जे झैं गर्जना गरेर शङ्ख बजाए ।

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पाणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्तसशब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥१३॥

भा.टी.-त्यहाँ उपरान्त शङ्ख , नगरा , ढोल ,मृदङ्ग र नरसिंहादि अनेक प्रकारका बाजाहरु एकै साथ बज्दा भए । ति बाजाहरुको त्यहाँ अत्यन्त भयङ्कर शब्द भयो ।

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ॥१४॥

भा.टी.- यस उपरान्त सेता रङ्ग भएका घोडाहरुले युक्त अत्यन्त उत्तम(असल) रथमा बसेर भगवान श्रीकृष्ण र अर्जुनले पनि दिव्य(अलौकिक) शङ्ख बजाउनु भयो ।

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥१५॥

भा.टी.- उसमा भगवान् श्रीकष्णले पाञ्चजन्य नाम गरेको महाशङ्ख र अर्जुनले देवदत्त नाम गरेका महाशङ्ख बजाउनु भयो । अत्यन्त डरलाग्दो (भयानक) कर्म गर्ने भएका , भीमसेनले पौण्ड नाम गरेको महाशङ्ख बजाउनु भयो ।

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥१६॥

भा.टी.-कुन्तीपुत्र महाराज युधिष्ठिरले अनन्तविजय नाम गरेको शङ्ख फेरी नकुल सहदेवले पनि सुघोष र मणिपुष्पक नाम गरेका शङख बजाउन भयो ।

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥१७॥

भा.टी.- अत्यन्त श्रेष्ठ धनुष लिनु भएका काशिराज र महारथी शिखण्डी अनि धृष्टद्युम्न फेरि राजा विराट र अजेय(कसैले पनि जित्न नसक्ने) सात्यकि ॥

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥१८॥

भा.टी.- हे राजन् ! फेरि राजा द्रुपद र द्रोपदीका पाँचै पुत्र अनि महाबाहु (बडा दुई हात भएका सुभद्राका) छोरा अभिमन्यु यी सबै जनाले बेग्ला बेग्लै शंङख बजाउनु भयो ।

स घोषो धृर्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥१९॥

भा.टी.- फेरि त्यो अत्यन्त भयानक शब्दले सम्पूर्ण आकाश र पृथ्वीलाई पनि शब्दायमान गराएर अनि फेरि धृतराष्ट्रका पुत्रहरुको हृदयलाई विदीर्ण (छिन्न भिन्न) गराईदिनु भयो ।

अथ व्यवस्तितान् दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥२०॥
हृषीशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।

अर्जुन उवाच
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापयमेऽच्युत ॥२१॥

भा.टी.- हे राजन् ! त्यहाँ उप्रान्त कपिध्वज अर्जुनले सबै खडा भएका धृतराष्ट्रका छोराहरुलाई देखेर , शस्त्रास्त्र चलाउनलाई तयार हुनु भएका बेलामा धनुष उठाएर हृषीकेश श्रीकृष्णसँग यो वचन भुन्नु भयो । हे अच्युत ! हे भगवान ! मेरा रथलाई दुवै तर्फका (सेनाका) विचमा लगेर खडा गराई दिनु हवस् ।

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥२२॥

भा.टी.- जहाँसम्म म युद्धका कामना गर्ने भएका सेना समूहलाई हेर्दछु , त्यहाँसम्म मेरा रथलाई स्थिर गरेर राखिदिनुहोस् । किनभने यस युद्धरुपी व्यापारमा मैले को को सँग लडाई गर्नुपर्दछ ।

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥२३॥

भा.टी.- त्यस दुर्बुद्धि दुर्योधनको युद्धमा कल्याण चाहना गर्ने त्यस सेनामा जो एकत्र हुन आएका छन् तिनलाई हेर्न चाहन्छु ।

संजय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्येस्थापयित्वारथोत्तमम् ॥२४॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरुनिति ॥२५॥

भा.टी.- सञ्जय भन्दछन् कि हे महाराज धृतराष्ट्र ! अर्जुनले यसरी भनेको सुनेर भगवान श्रीकृष्णले दुवै तर्फका सेनाका बीचमा पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य र सम्पूर्ण राजाहरुका अगाडि

त्यो उत्तम(अति असल) रथलाई खडा गरेर यस्तो वचन आज्ञा गर्नु भयो , हे अर्जुन ! यी जम्मा भएका कौरवहरुलाई हेर ।

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितृनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा
श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ॥२६॥

भा.टी.- त्यहाँ उप्रान्त पृथापुत्र अर्जुनले ती दुवै तर्फका सेनामा उपस्थित भएका पिताका भाई(काका)हरु , पितामहहरु, आचार्यहरु, मामाहरु , भाईहरु , पुत्रहरु , नातिहरु, मित्रहरु ससुराहरु र फेरी सुहृद्हरुको उपस्थिति देख्नु भयो ।

तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ।
कृपया परयाविष्टोविषीदन्निदमब्रवीत् ॥२७॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारसँग खडा भएका ती सम्पूर्ण बन्धुहरुलाई देखेर अत्यन्त करुणाले युक्त भएका ती कुन्तीपुत्र अर्जुनले यस्तो वचन बोल्नु भयो ।

अर्जुन उवाच

दृष्टेवमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥२८-२९॥

भा.टी.- हे कृष्ण ! यस युद्धको ईच्छा गरेर खडा भएका यी मेरा स्वजन समुदायहरुलाई देखेर मेरा अंग शिथिल हुँदै जान लाग्यो

, फेरि मुख पनि सुख्तै गयो , अनि मेरो शरीर काम्न र रोमाञ्च (रौं ठाडा) पनि हुन थाल्यो ।

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥३०॥

भा.टी.- फेरि मेरो हातबाट गाण्डीव धनुष पनि खसिरहेछ, अनि छाला पनि आगाले पोले झैं पोल्दछ , फेरि मेरो मन पनि भ्रमित भईरहेको छ , यसै कारण म यस बेला उभिन पनि असमर्थ भईरहेको छु ।

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥३१॥

भा.टी.- हे केशव ! फेरि यो सबै लक्षण पनि विपरीत नै देख्दैछु , किनभने युद्धमा आफ्नै कूललाई मार्नाले कल्याण म कत्ति पनि देख्दिन ।

न काङ्क्षेविजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥३२॥

भा.टी.- फेरि हे कृष्ण ! म अहिले विजय गर्ने ईच्छा पनि गर्दिन, अरु यो राज्यको सुख ईच्छा पनि गर्दिन । हे गोविन्द ! मलाई राज्यको पनि केहि प्रयोजन छैन । अर्थात यो सम्पूर्ण भोगादिको र जीवनको पनि केहि छैन ।

येषामर्थे काङ्क्षितंनो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धेप्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥३३॥

भा.टी.- किनभने म जसका लागि राज्य , भोग र सुखादिको ईच्छा गर्दछु , तिनीहरुनै यो सबै राज्य, धन र जीवनको आशासमेत त्याग गरेर युद्धमा उपस्थित भएका छन् ।

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा
॥३४॥

भा.टी.- गुरुजन , साना बुबा , ठूला बुबा, कान्छा बुबा , भतिजा र उस्तै पितामहादि , मामा, ससुरा , नाति र नातेदारहरुनै छन् ।

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥३५॥

भा.टी.- यसै कारण हे मधुसूदन ! म मारिए तापनि तीनै लोकको राज्यका लागि यी सबै मार्ने ईच्छा गर्दिन । फेरि यो पृथ्वीका लागि त कुरै के रहयो र ।

निहत्य धार्तराष्ट्रन्नः का प्रीति : स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः ॥३६॥

भा.टी.- हे जनार्दन ! धृतराष्ट्रका छोराहरुलाई मारेर पनि मलाई के प्रसन्नता प्राप्त हुन्छ र अर्थात् केहि पनि हुँदैन । आततायीहरुलाई मार्दामा मलाई बरु उल्टो पाप लाग्नेछ ।

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥३७॥

भा.टी.- यसकारण हे माधव ! यी आफ्ना बान्धव धृतराष्ट्रका छोराहरुलाई मार्न म योग्य छैन , किनभने आफ्नो दाजुभाईहरुलाई मारेर म कसरी खुसी हुँला , अवश्य पनि हुन्न ।

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥३८॥

भा.टी.-यद्यपि लोभले भ्रष्ट चित्त भएका यिनीहरु कूलको नाश गरेको पाप र इष्टमित्रहरुका साथ विरोध गर्नाले पनि कत्ति पाप देख्दैन ।

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥३९॥

भा.टी.- हे जनार्दन ! यसकारण कूलको नाश गर्दा हुने पापलाई जान्ने भएका हामीले यस पापदेखि हट्नाका निमित्तमा नै किन विचार नगर्ने ? अर्थात् यो पापदेखि पर हट्नको लागि युक्ति गर्नु नै असल हुन्छ ।

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥४०॥

भा.टी.- किनभने कूलको नाश हुनाले सनातन धर्मको नाश भएर जान्छ । धर्मको नाश हुनाले सम्पुर्ण कूललाई पापले अत्यन्त ग्रस्त गरेर दबाउने छ ।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्कर ॥४१॥

भा.टी.- तसर्थ हे कृष्ण ! पाप धेरै बढ्न गयो भने कुलांगना(कूलका स्त्रीहरु) दोषी हुन जान्छन् । फेरी हे वार्ष्णेय ! स्त्रीहरु यदि दोषयुक्त भए भने पछि वर्णसङ्कर (जारपुत्रादि) जन्माउने हुन्छन् ।

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥४२॥

भा.टी.- अनि ती कूलघाती वर्णसङ्करहरु जो छन ती कूललाई समेत नरकमा सिधै लैजानका लागिमा नै अगाडी हुन्छन् । यस्ता प्रकारले कूलको नाश गर्ने भएका पितृहरु पनि पिण्ड तर्पण समेत नपाई सीधा नर्कमा गएर पर्ने छन् ।

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्चशाश्वताः ॥४३॥

भा.टी.- फेरि यी वर्णसंकर कुलघाती बनाउनेहरु पनि यी सम्पूर्ण दोषले सनातन जातिधर्म , कुलधर्म ,आश्रमधर्म समेत सबैबाट छुट्दैनन्, यसकारण कूल नाश गर्ने युद्धबाट अलग हुनु नै मेरा विचारमा कल्याणकारक बाटो छ ।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥४४॥

भा.टी.- तसर्थ हे जनार्दन ! जुन मनुष्यको कूलधर्म र जाति धर्म नष्ट भएको छ , तिनको अनन्त काल पर्यन्त घोर नर्कमा वास हुन्छ भन्ने यी कुरा मैले पुराण, इतिहास र धर्मशास्त्रादिमा सुनेको छु ।

अहो बत महत्पापं कर्तु व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥४५॥

भा.टी.- अहो ! यो बडो खेदको कुरा हो कि हामीहरु बुद्धिमान भएर पनि, जो कि यो तुच्छ राज्यका लोभले आफ्ना जन बन्धु बान्धवहरुलाई मार्न तयार भएर यस्तो महापाप गर्ने उद्योग गरिसकेको छौ कि यसको फलस्वरुप त महापापदेखि अरु केही पनि हात लाग्ने छैन ।

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मेक्षेमतरंभवेत् ॥४६॥

भा.टी.- यदि मलाई शस्त्ररहित भै सामुन्ने नजाँदा पनि शस्त्रधारी धृतराष्ट्रका छोराहरुले मलाई रणमा मारेदेखि त्यहाँ मर्नु मेरा लागि त अत्यन्तै कल्याणकारक होला , किनभने मर्दामा पापको कत्ति पनि संसर्ग रहँदैन ।

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानस : ॥४७॥

भा.टी.- संजय भन्दछन् कि हे महाराज ! त्यस रणभुमिमा भगवान् श्रीकृष्णसँग यस्तो कुरा गरेर शोकले र सन्तापले अत्यन्त व्याकुल मन भएका ती अर्जुनले रणमा जित्ने आशा त्याग गरेर धनुषवाण सबै छाडी त्यहि रथका पछिल्ला भागमा गएर वस्नु भयो ।

ॐ तत्सदित्ति श्रीमदभागवद्‌गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रले श्रीकृष्णअर्जुनसंवादेऽर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्याय: ॥१॥

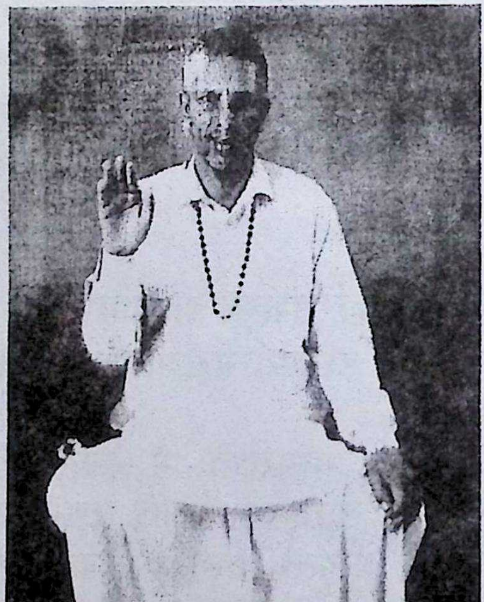

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भगवद्गीता

द्वितियोऽध्यायः

संजय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥१॥

भा.टी.- सञ्जय भन्दछन् कि हे महाराज ! पूर्वोक्त प्रकारले कृपायुक्त आँशुले परिपूर्ण र व्याकुल नेत्र गराएर शोकले अत्यन्त पीडित भएका अर्जुनलाई देखी दःखबाट उद्धार गर्ने भएका भगवान् श्रीकृष्णले ब्रह्मविद्या ज्ञानको बोध गराउदा यस्ता वचन आज्ञा गर्नु भयो ।

श्रीभगवानुवच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥२॥

भा.टी.- अर्जुनलाई यस प्रकार काँतर देखेर श्रीकृष्ण आज्ञा गर्नुहुन्छ कि हे अर्जुन ! तिमी यस्ता कुसमयमा र यो लडाइका बीचमा तिम्रो यो अज्ञानता र काँतरपन कुन हेतुले प्राप्त भयो, किनकि यो न त श्रेष्ठ पुरुषहरुले आचरण गरेका छन् , न त यसले स्वर्ग पाईन्छ, न कृति फैलिन्छ , अर्थात् केहि पनि हुँदैन । फेरि अर्जुन भन्ने पृथ्वीमा प्रसिद्ध नाम छ । त्यस्ता वीर पुरुषलाई पनि यस्तो मोह प्राप्त हुनु यो बडो आश्चार्यको कुरा हो ।

क्लैब्यं मा स्मगमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥३॥

भा.टी.- अर्जुनलाई भगवान फेरि पनि आज्ञा गर्नु हुन्छ कि हे अर्जुन ! यसैकारण यो नपुंसकता नबोलाउ । यो तिम्रो योग्यता होइन । हे परंतप ! यो तुच्छ हृदयको दुर्बलतालाई छोडेर युद्ध गर्नका निमित्त उठ । धैर्य धारण गरेर समर्थको काम गर । कुन्तिपुत्र भन्नाले मातृभाव कन्यामा र पितृभाव पुत्रमा हुन्छ । विचार राख तिमीले अगि पनि युद्धमा धेरैचोटि जिती सकेका छौ ।

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥४॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारले सम्झाईएका अर्जुन शोकले पीडित भै श्रीकृष्णसँग यो भन्नु भयो कि हे मधुसूदन ! त्यो रणभूमिमा पूजा गर्नमा योग्य भएका भीष्मपितामह र द्रोणाचार्य हुनुहुन्छ । म उनीहरुलाई कस्तो प्रकारले वाणहरुको वर्षा गरौं , किनभने हे अरिसूदन ! जसलाई वचन मात्र पनि बोल्न सकिदैन ।

गुरुनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गरुनिहैव
भञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥५॥

भा.टी.- अर्जुन भन्दछन् कि यसै कारणले हाम्रा र दुर्योधनका लडाइमा महानुभाव गुरुहरुलाई नमार्दामा मलाई राज्यादिको सुख मिल्दैन भने नमिलोस् अर्थात् यो सबै झंझट छोडेर मलाई यो लोकमा भिक्षाटन गरेर त्यै अन्नादिका भोगले जीवन वृत्तिगर्नमा नै अत्यन्त कल्याण सम्झन्छु । किनभने गुरुहरुलाई मारेर पनि यो लोकमा उनका रगतले मुछिएको यो तुच्छ राज्यसुख मलाई चाहिदैन , किनकी अर्थ र कामरुप भोगलाईनै यहाँ पनि भोगौला, यसैले परलोक र यो लोक दुबैमा दुःख र दुर्यश हुनेछ । यो तुच्छ सुखका निमित्त यत्रो महान युक्ति मार्गलाई कसले छोड्न सक्दछ ।

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥६॥

भा.टी.- फेरि हामीहरु यो पनि जान्दैनौ कि हाम्रा लागि के गर्न असल हुन्छ । अनि फेरि यो पनि जान्दैनौ कि हामीहरु जित्छौं कि उनीहरु जित्छन् । फेरि जसलाई मारेर हामीहरु बाँच्न पनि चाहदैंनौ । तिनै धृतराष्ट्रका छोराहरु हाम्रा सामुन्ने युद्ध गर्नका लागि उभिरहेका छन् ।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढाचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यन्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधिमां त्वां प्रपन्नम्॥७॥

भा.टी.- यसै कारणले काँतरता रुप दोषले भरिएको स्वभाववला र धर्म विषयमा मोहित चित्त भएको म हजुरलाई यो प्रश्न गर्छु कि

जुन निश्चय गरिएको कल्याण कारक साधन छ त्यो मेरा लागि भन्नुहोस् । किनभने म हजुरको शिष्य हूँ, यसैकारण हजुरका शरणागत भएको मलाई शिक्षा दिनुहोस् ।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्या-
द्यच्छोकमुच्छोषणामिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यां सुराणामपि चधिपत्यम् ॥८॥

भा.टी.- किनकि पृथ्वीमा निष्कण्टक धनधान्यादिले सम्पन्न राज्यको र देवताहरुको स्वामित्व नै प्राप्त भएर पनि म त्यो उपाय देख्दिन , जसले कि यी मेरा इन्द्रियहरुलाई सुकाउने भएको शोकलाई हटाउन सकियोस् ।

संजय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप ।
नयोत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभुवह ॥९॥

भा.टी.-संजय भन्छन् हे राजन ! निन्द्रालाई जित्ने भएका अर्जुनले अन्तर्यामी श्रीकृष्ण भगवानका सामुन्ने यसरी भनेर फेरि भगवान गोविन्दलाई म युद्ध गर्दिन यस्तो स्पष्टसँग भनि चुपचाप भएर बस्नु भयो ।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥१०॥

भा.टी.- त्यहाँ उप्रान्त हे भरतवंशी महाराज धृतराष्ट्र ! अन्तर्यामी भगवान श्रीकृष्ण महाराजले दुवै तर्फका सेनाहरुका बीचमा ती शोकले अत्यन्त पीडित भएका अर्जुनलाई मन्द मन्द हाँसेर यो वचन भन्नु भयो ।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥११

भा.टी.- श्री कृष्ण भगवान भन्नुहुन्छ हे अर्जुन ! तिमी शोक गर्न अयोग्य मनुष्यहरुका लागि शोक गरिरहेका छौ । पण्डितहरुले यो बचन भन्दछन् , तर पण्डितजनहरु जसको प्राण निस्केर गयो , अरु फेरि जसको प्राण निस्केर गएको छैन , पण्डितहरु उसको पनि शोक गर्दैनन् ।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामःसर्वेवयमतःपरम् ॥१२॥

भा.टी.- किनभने आत्मा नित्य छ , यस निमित्त शोक गर्नु व्यर्थ नै छ । वास्तवमा न त यस्तै म कोई कालमा थिएँ , अर्थात तिमी पनि थिएनौ , फेरि यी राजाहरु पनि थिएनन् , फेरि न यस्तै प्रकार अगाडि हामीहरु सधैं रहने छौं ।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्प्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥१३॥

भा.टी.- तर जस्तै जीवात्माको यस देहमा कुमार, युवा र वृद्ध अवस्था हुन्छ , उस्तै प्रकारले अन्य शरीर प्राप्त हुन्छ । त्यस विषयमा धीर पुरुषहरु मोहित हुदैंनन् अर्थात जसरी कुमार, युवां,

र अनि जरा अवस्था रुप स्थूल शरीरका विकार अज्ञानले आत्मामा देखिन्छ उस्तै प्रकारले एक शरीरदेखि अर्को शरीर प्राप्त हुने रुप सूक्ष्म शरीरको विकार पनि अज्ञानले नै आत्मामा भान हुन्छ । यसै निमित्त तत्वलाई जानेका धीर पुरुषहरु यस विषयमा कति पनि मोहित हुँदैनन् ।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेयशीतोष्णसुखदुः खदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितीक्षस्व भारत ॥१४॥

भा.टी.- हे कुन्तिपुत्र अर्जुन ! जाडो गर्मी र सुख दुःखादि दिनेवाला इन्द्रिय र विषयहरुको संयोग त क्षणभंगुर र अनित्य छन् । यस कारणले हे भरतवंशी अर्जुन ! तिनलाई तिमी सहन गर ।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृत्वायकल्पते ॥१५॥

भा.टी.- हे पुरुष श्रेष्ठ ! किन भने सुखदुःखलाई समान सम्झने वाला जुन धीर पुरुषलाई यो इन्द्रियहरुका विषयले व्याकुल गर्न सक्दैनन् , ती मोक्षकालागि योग्य हुन्छन् ।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः ॥१६॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! असत् वस्तुको त अस्तित्वनै हुदैन , अनि फेरि सत्को अभाव पनि हुदैन , यस्ता प्रकारले यी दुबैको अन्त तत्वज्ञानी पुरुषहरुद्वारा देखिएको छ ।

अविनाशी तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥१७॥

भा.टी.- यसै न्यायका अनुसार नाश रहित त उसैलाई जान्नु , जसदेखि सम्पूर्ण चराचर जगत व्यापक रहेको छ । किनभने यस अविनाशीलाई विनाश गर्नमा कसैको पनि सामर्थ्य छैन ।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्तः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥१८॥

भा.टी.- अनि फेरि यस नाश रहित अनन्त नित्य स्वरुप (सधै एकनाश रहिरहने) जीवात्माको यो सब शरीर नाशवान् भनिएको छ । यसको निमित्त हे भरतवंशी अर्जुन तिमी युद्ध गर ।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥१९॥

भा.टी.- फेरि जो यो आत्मालाई मार्नेवाला सम्झन्छ अनि जो यसलाई मरेको भनेर मान्दछ , ती दुबै नै जान्दैनन् , यो आत्मालाई न कसैले मार्दछ न फेरि कसैदेखि मारिन्छ।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०

भा.टी.- यो आत्मा कुनै कालमा पनि न जन्मन्छ न त फेरि मर्दछ नै अर्थात यो आत्मारुप भएर रहनेवाला हो , किनभने यो

अजन्मा नित्य शाश्वत र पुरातन हो , शरीरको नाश भएर जाँदा पनि यो आत्माको नाश हुँदैन ।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथ स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥२१॥

भा.टी.- हे पृथापुत्र अर्जुन ! जो पुरुषले यो आत्मालाई नाश रहित नित्य अजन्मा (अविनाशी अर्थात कहिले नाश नहुने) जान्दछ , त्यो पुरुषले कसरी कसलाई मराउँदछ फेरि कस्ता प्रकारले कसलाई मार्दछ ।

वसांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥२२॥

भा.टी.- फेरि यदि तिमीले यो भनौला कि म त शरीर वियोगको शोक गर्दछु , तर त्यो पनि उचित छैन । किनभने जसरी मनुष्यहरु पुराना वस्त्रलाई फालेर दोस्रो नयाँ वस्त्र फेर्दछन् , उस्तै प्रकारसँग जीवात्मा पनि पुराना शरीरलाई त्यागेर अरु नयाँ शरीरको ग्रहण गर्दछ अर्थात नयाँ शरीरमा प्राप्त हुन्छ ।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥२३॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! यो आत्मा कस्तो बलवान् छ भने हतियारले पनि काट्न सक्दैन , फेरि यो आत्मालाई आगोले पोल्न पनि

सक्दैन , पानीले बगाउन पनि सक्दैन , वायुले सुकाउन पनि सक्दैन ।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयंसनातनः ॥२४॥

भा.टी.- किनभने यो आत्मा अच्छेय छ । फेरि यो आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य, अशोष्य पनि छ । फेरि यो आत्मा निःसन्देह नित्य र सर्वव्यापक अचल स्थिर रहने र फेरि सर्व सनातन पनि छ ।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥२५॥

भा.टी.- फेरि यो आत्मा अव्यक्त अर्थात ईन्द्रियहरुको अविषय र फेरि यो आत्मा अचिन्त्य (मनले चिन्तन गरेर नसकिने) अनि फेरि यो आत्मा विकार रहित अर्थात नबदलिने भनिएको छ । यसकारणले गर्दा हे अर्जुन ! यस आत्मालाई यस्तो जानेर तिमी शोक गर्नमा योग्य छैनौ अर्थात तिमीले शोक गर्नु उचित हुदैन ।

अथ चैनं नित्यजातं नित्य वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥२६॥

भा.टी.- फेरि यदि तिमी यसलाई सदा जन्मने र फेरि मर्नेवाला भन्ने मान्दछौ भनेपनि त हे महाबाहो ! हे अर्जुन ! यस प्रकारको शोक गर्नलाई कदाचित् पनि योग्य छैनौ ।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥२७॥

भा.टी.- किनभने यस्तो हुनाले नै जन्मनेको निश्चय मृत्यु र फेरि मर्नेको जन्म हुनु निश्चयै सिद्ध भयो । यस निमित्त पनि तिमी यो बिना उपायवाला विषयमा शोक गर्नलाई कत्ति पनि योग्य छैनौ ।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिवेदना ॥२८॥

भा.टी.- फेरि यी भीष्मपितामहादिको शरीर पनि मायामय हुनाले अनित्य छ , यसले शरीरहरुका लागि पनि शोक गर्नु उचित होइन, किनभने हे अर्जुन ! सम्पूर्ण प्राणीहरु जन्मनु भन्दा पहिला बिना शरीरका थिए । फेरि मरेपछि पनि बिना शरीरका नै हुन्छन् । खाली बीचमा मात्रै शरीरवाला प्रतित हुन्छन् । फेरि त्यस विषयमा के चिन्ता ।

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेन
मश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥२९॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! यो आत्मतत्व सारै गहन छ । यस निमित्त कोही एक महापुरुषहरुले यो आत्मालाई आश्चर्य जस्तो देख्दछन् । फेरि त्यस्तै प्रकारले दोस्रा कोही (महापुरुष) ले आश्चर्य जस्तो (यो तत्वलाई) भन्दछन् , फेरि दोस्रा कोही कोही यो आत्मालाई आश्चर्य जस्तै सुन्दछन् , फेरि कोही कोही त सुनेर पनि यो आत्मालाई जान्दैनन् ।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥३०॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! यो आत्मा सबैका शरीरमा सदा सर्वदा नै अवध्य (जस्को बध गरेर गरि नसक्नु) छ , यस निमित्त सम्पूर्ण भूतप्राणीहरुका लागी तिमी शोक गर्न योग्य छैनौ ।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकपितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३१॥

भा.टी.- फेरि आफ्नो धर्मलाई देखेर पनि तिमीले डराउनु योग्य छैन । किन भने धर्मयुक्त युद्धदेखि बढेर दोस्रो केही पनि कल्याणकारक कर्तव्य क्षेत्रीयहरुका लागि अरु हुँदैन ।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥३२॥

भा.टी.- हे पार्थ ! आफैंआफ प्राप्त भएर खुलेको स्वर्गको द्वार स्वरुप यस प्रकारका युद्धलाई त केवल भाग्यशाली क्षेत्रीयहरु मात्र पाउँछन् , अरुले कदापि पनि पाउन सक्दैनन् ।

ऋथ चेत्वमिमं धर्म्य संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्म कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥३३॥

भा.टी.- अब पनि तिमीले यस धर्मयुक्त संग्रामलाई गरेनौ भने त आफ्ना स्वधर्म कर्तव्य र आफ्ना अक्षय कीर्तिलाई समेत हराएर पापमा प्राप्त हुनेछौ ।

अकीर्तिं चापि भूतानिकथयिष्यन्तितेऽव्ययाम् ।
सम्भानितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४॥

भा.टी.- फेरि पछि सबै जनाले तिम्रो धेरे कालपर्यन्त रहने भएको अक्षय कीर्तिलाई पनि अपकीर्ति बनाएर कथन गर्ने छन्, त्यो महान अपकीर्ति माननीय पुरुषहरुका निमित्त मरण भन्दा पनि अधिमतर (धेरै) नराम्रो हुन्छ ।

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भून्वा यास्यसि लाघवम् ॥३५॥

भा.टी.- अनि फेरि जसको तिमी अत्यन्त माननीय भएर पनि फेरि यो तुच्छतामा प्राप्त हुन लाग्यौ भने त ती सबै महारथीहरुले तिमी डराएर युद्ध देखि उपराम(विमुख) भयो भन्ने सम्झने छन् ।

अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्य ततो दुःखतरं नु किम् ॥३६॥

भा.टी.- फेरि तिम्रा शत्रुहरु तिम्रा सामर्थ्यको निन्दा गर्दा र विभिन्न किसिमको वचन भन्ने छन् । फेरि त्यो भन्दा ठूलो दुःख अरु के हुन सक्दछ ।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ट कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥३७॥

भा.टी.- यस निमित्त युद्ध गर्नलाई सब प्रकारबाट राम्रो छ , किनभने या त मरेर स्वर्गमा प्राप्त हुन्छ , अथवा जितेर पृथ्वीको भोग भोगिन्छ , त्यसकारणले गर्दा हे अर्जुन ! युद्ध गर्नाका निमित्त निश्चयवाला भएर उठ , खडा होऊ ।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥३८॥

भा.टी.- यदि तिमीलाई स्वर्गको र राज्यको पनि ईच्छा छैन भने सुख दुःख लाभ हानि र जय पराजयलाई एकै सम्झिएर उसका उप्रान्त युद्ध गर्नमा निमित्त तैयार होऊ । यस प्रकारबाट युद्ध गर्नाले तिमी पापमा प्राप्त हुदैनौ ,अर्थात तिमीलाई पाप लाग्दैन ।

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां श्रृणु ।
बुद्धाचा युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥३९॥

भा.टी.- हे पार्थ ! यो बुद्धि तिम्रा लागि ज्ञानयोगका विषयमा भनियो यसको यो निष्काम कर्मयोगका विषयमा सुन, जस बुद्धिले युक्त भएका तिमी कर्मका बन्धनलाई राम्रो प्रकारसँग नाश गरौला ।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य भर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥४०॥

भा.टी.- फेरि यस निष्काम कर्मयोगमा आरम्भको अर्थात वीजको नाश हुँदैन र उल्टो फलस्वरुप दोष पनि हुँदैन । यसकारण यो निष्काम कर्मयोगरुपी धर्मको अलिकति पनि

साधन अर्थात जन्ममृत्युरुपी महान् भयदेखि उद्धार गरिनेछ ।

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥४१॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! यस कल्याणमार्गमा निश्चयात्मक बुद्धि एउटै मात्र छ, तर फेरि अज्ञानी अर्थात सकामी पुरुषहरुको बुद्धि त धेरै प्रकारका भेदले भरिएका अनन्त प्रकारका हुन्छन् ।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥४२॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥४३॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! सकामी पुरुषहरु केवल फल श्रुतिमा प्रीति राख्नेवाला यसदेखि बढेर फेरि केहि पनि छैन भनेर यस्तो भन्ने ती अविवेकी जनहरु जन्मरुपी कर्मफललाई दिनेवाला र फेरि भोग र ऐश्वर्यका प्राप्तिका लागी बहुतै क्रियाहरुको विस्तारवाला यस प्रकारको जस्तो देखावटी शोभायमान वाणी लाई भन्दछन् ।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां नयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥४४॥

भा.टी.-त्यस वाणीद्धारा चित्त हरिएका छँदा फेरि भोग र एश्वर्यमा आसक्तवाला अन्तःकरणमा निश्चयात्मक बुद्धि कसै गरेर पनि हुन सक्दैन ।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥४५॥

भा.टी.- अरु हे अर्जुन ! सबै वेद तीनै गुणको कार्यरुपी संसारको विषय गर्ने भएका अर्थात प्रकाशगर्नेवाला हुन् (यस निमित्त) पनि असंसारी अर्थात निष्कामी र सुखदु:खादि द्वन्ददेखि रहित नित्य वस्तुमा स्थित अर्थात योग , क्षेमालाई न चाहनेवाला र फेरि आत्मा परायण होऊ ।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥४६॥

भा.टी.- किनभने (मनुष्यहरुको) सब तरह परिपूर्ण प्रकारबाट जलाशय प्राप्त(मिलेर) भएर फेरि साना जलमा जति प्रायोजन रहन्छ , राम्रा तरह संग ब्रह्मलाई जान्ने भएका ब्राह्मण पनि वेदमा उति नै प्रयोजन रहन्छ । अर्थात जस्तै ठूलो जलाशय, पोखरी, समुद्रमा प्राप्त भई सकेपछि साना जलाशय अर्थात साना कुवा खोलाहरुको आवश्यक हुँदैन उस्तै प्रकारले ब्रह्म प्राप्त भईसकेपछि आनन्दका लागि वेदादिको आवश्यकता रहँदैन ॥

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥४७॥

भा.टी.- यसले तिम्रो कर्म गर्ने मात्रामा नै अधिकार हुन्छ । फलमा कहिले पनि रहँदैन । फेरि तिमी कर्म फलको वसनावाला पनि नहोऊ । तिम्रो कर्मगर्नमा नगर्नमा पनि प्रीति हुनेछैन ।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥४८॥

भा.टी.- हे धनञ्जय ! आसक्तिलाई छोडेर फेरि सिद्धि र असिद्धिमा पनि समान बुद्धिवाला भएर योगमा स्थित भई अर्थात बसी कर्म गर । यो समत्व भाव नै योगका नामले नै भनिन्छ ।

दुरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥४९॥

भा.टी.- यस समत्व स्वरुप बुद्धियोग देखि सकाम कर्म अत्यन्त तुच्छ छ , यस निमित्त हे अर्जुन ! समत्व वुद्धियोगको आश्रय ग्रहण गर , किभने फलको इच्छा गर्नेवाला अत्यन्तै दुःखी हो ।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥५०॥

भा.टी.- फेरि समत्व बुद्धियुक्त पुरुष , पुण्य पाप दुवैलाई यसै लोकमा नै त्यागिदिन्छ अर्थात तिन देखी कहिले पनि लेपायमान हुँदैनन् । यसले समत्व बुद्धियोगका लागि नै प्रयास गर । यो समत्व बुद्धिरुपीयोग नै कर्महरुमा चलाख छ , अर्थात् कर्मको बन्धनबाट छुट्ने उपाय यही छ ।

कर्मजं बुद्धियुक्ताहि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥५१॥

भा.टी.- किनभने बुद्धियोगयुक्त ज्ञानीजन कर्महरुदेखि उत्पन्न हुनेवाला फललाई त्यागेर जन्मरुपी बन्धनदेखि छुटेको छँदा अर्थात अमृतमय परमपदमा प्राप्त हुन्छन् ।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥५२॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! जुन बेलामा तिम्रो बुद्धि मोहरुपी भास(हिलोको दलदल) बाट पार हुनेछ । तब तिमी सुन्नलाई योग्य र सुनिसकेका वैराग्यमा गएर प्राप्त हुन सकौला ॥

श्रुतिविप्रतिपन्न ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥५३॥

भा.टी.- फेरि जब तिमी धेरै प्रकारका सिद्धान्तहरु सुनेर विचलित भएका बुद्धिलाई परमात्माका स्वरुपमा अत्यन्त अचल र स्थिर गरेर बसाउला , तब तिमी समत्वरुप योगमा गएर प्राप्त हुनेछौ ।

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥५४॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारका भगवान श्रीकृष्णका वचन सुनेर अर्जुनले यो विन्ती गर्नु हुन्छ कि हे केशव ! समाधिमा स्थिर बुद्धि भएका पुरुषको के कस्तो लक्षण हुन्छ ? फेरि ती स्थिर बुद्धि भएका पुरुष कसरी बोल्दछन् ? कसरी बस्दछन् ? कसरी हिड्दछन् ?

प्रजाहति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥५५॥

भा.टी.- त्यस पछि अर्जुनको यस्तो प्रश्न सुनेर भगवान श्रीकृष्ण आज्ञा गर्नुहुन्छ , हे अर्जुन ! जुन कालमा ती पुरुष मनमा स्थित भएका सम्पूर्ण कामनालाई त्याग गरि दिन्छन् उसै कालमा आत्मादेखि आत्मैमा सन्तुष्ट भएका स्थिर बुद्धिवाला भन्ने गरिन्छ ।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितिधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

भा.टी.- अनि पछि दुःखादिका प्राप्तिमा उद्वेग रहित छन् जसको फेरि सुखादिका प्राप्तिमा पनि दूर भै सक्यो जसको ईच्छा अनि फेरि नष्ट भई सक्यो राग, भय र क्रोधादि पनि जसको अर्थात सम्पूर्ण सुखदुःखादी हर्ष शोक र राग द्वेषादि देखि रहित भै सकेका यस्ता नै स्थिर बुद्धिवाला भनेर भनिन्छ ।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५७॥

भा.टी.- फेरि जुन पुरुष सर्वत्र स्नेह रहित (प्रीति देखि ऊ अलग) भई ती शुभ र अशुभ वस्तुहरुको प्राप्ति हुँदामा पनि न खुशी हुन्छन् न द्वेष(रीस) गर्दछन् अर्थात तिनैको बुद्धि स्थिर हो ।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५८॥

भा.टी.- अनि फेरि कछुवाले आफ्ना अङ्गलाई जसरी समेटेर एकै पोको पार्दछ , उस्तै गरी यो पुरुष जब सबै प्रकारबाट आफ्ना

ईन्द्रियहरुका विषयबाट समेटेर लिन्छन् तब उनको बुद्धि स्थिर हुन्छ ।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्ज रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥५९॥

भा.टी.- यद्यपि ईन्द्रियहरुद्वारा विषय आदिलाई ग्रहण नगर्ने पुरुषको पनि केवल विषय मात्रैको त निवृत्त भै जान्छ । तर रागको त निवृत्ति हुँदैन , फेरि यी पुरुषको त राग पनि परमात्मा साक्षात्कार गरेपछि निवृत्त हुन्छ ।

यततोह्यपि कौन्तेय परुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥६०॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! प्रयत्न गर्दागर्दै बुद्धिमान पुरुषको मन पनि यी चञ्चल स्वभाव भएका इन्द्रियहरु बलपूर्वक विषय तिर तान्दछन् ।

तानिसर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६१॥

भा.टी.- यसको निमित्त मनुष्यको कर्तव्य यो हो कि त सम्पूर्ण इन्द्रियहरुलाई वशमा गरेर समाहित चित्त भएर मै मा परायण स्थित हुनु , किनभने जुन पुरुषको इन्द्रियहरु वशमा हुन्छन् , उसको बुद्धि पनि स्थिर हुन्छ ।

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥६२॥

भा.टी.- मनले चिन्तन गर्दागदै मानिसको विषयमा आशक्ति उत्पन्न हुन्छ। फेरि विषयको आशक्तिले कामना उत्पन्न हुन्छ, त्यसबाट कोध उत्पन्न हुन्छ।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहातस्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशाद्त्प्रणश्यति ॥६३॥

भा.टी.- फेरि कोध देखि अविवेक अर्थात मूढभाव उत्पन्न हुन्छ, अनि त्यो अविवेकताले स्मरण शक्तिको भ्रान्ति हुन्छ, स्मृतिको भ्रान्ति हुनाले ज्ञानशक्तिको नाश हुनजान्छ, बुद्धिको नाश हुनाले आफ्ना श्रेयकारक साधन देखि गिरेर जान्छ।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥६४॥

भा.टी.- तर स्वाधौन अन्तःकरणवाला पुरुष राग द्वेष रहित आफ्नो वशमा गरेर इनिद्रयहरुद्वारा विषयलाई भोग गर्दागर्दै अन्तःकरणमा प्रसन्नता अर्थात् स्वच्छतामा प्राप्त हुन जान्छन्।

प्रसादे सर्वदुःखनां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसोह्यशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥६५॥

भा.टी.- अनि फेरि त्यो निर्मलता हुँदा पनि यसको सम्पूर्ण दुःखादिका अभाव हुन जान्छ र त्यो प्रसन्न चित्तवाला पुरुषको बुद्धि शीघ्र नै राम्रा प्रकारसँग स्थिर हुन जान्छ।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्यकुतः सुखम् ॥६६॥

भा.टी.- साधना रहित पुरुषको अन्त:करणमा श्रेष्ठ बुद्धि हुन सक्दैन , फेरि त्यो अयुक्तको (अन्त:करणमा) आस्तिक भाव पनि हुँदैन । बिना आस्तिक भाववाला पुरुषको शान्ति पनि हुँदैन । शान्ति देखि रहित भएका पुरुषलाई सुख कसरी हुनसक्छ अर्थात हुँदैन ।

इद्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥६७॥

भा.टी.- किनभने समुद्रमा तर्न लागेको नाउलाई वायु अर्थात आँधी बतास आदिले जसरी हर्दछ अर्थात डुबाई दिन्छ , उस्तै प्रकारले विषयमा विचर्न लागेको इन्द्रियहरुलाई बीचैमा जस इन्द्रियका साथमा मन रहन्छ त्यो एकै इन्द्रियले यो अयुक्त पुरुषका बुद्धिलाई हरण गर्दछ ।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६८॥

भा.टी.- यसले हे महाबाहो ! जसका इन्द्रिय सबै प्रकारका इन्द्रियहरुका विषयदेखि वशमा गरेका हुन्छन् । उनैको बुद्धि स्थिर हुन्छ ।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भुतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥६९॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! सम्पूर्ण प्राणीहरुका लागिमा जुन रात्री हुन्छ , त्यो रात्रिमा नित्य शुद्ध बोध स्वरुप परमानन्दमा अर्थात भगवतप्राप्त भएका पुरुष जाग्दछन् । फेरि जुन नाशवान् क्षणभंगुर सांसारिक सुखमा सबै भूतप्राणीहरु जाग्दछन् , तत्व जान्ने भएका गुणीका लागिमा त्यो रात्री हुन्छ ।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
सपुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥७०॥

भा.टी.- जसरी परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाला समुद्रमा गएर अनेक प्रकारका नदिहरुको जल समुद्रलाई चलायमान नगरी रहन्छ , उस्तै प्रकारले जुन स्थिर बुद्धिवाला पुरुषका पनि सम्पूर्ण भोग कुनै प्रकारको विकार उत्पन्न नगरिकन उसैमा लीन हुन्छन् ती पुरुष परम शान्तिमा प्राप्त हुन्छन् , न कि भोगको इच्छा गर्ने ।

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥७१॥

भा.टी.- किनभने जुन पुरुष सम्पूर्ण कामनाहरुलाई त्याग गरे ममता रहित र निरहङ्कार अर्थात अहङ्कारले रहित स्पृहारहित हुन्छ त्यो पुरुषलाई शान्ति मिल्दछ ।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥७२॥

भा.टी.- हे पार्थ ! हे अर्जुन ! यो ब्रह्म प्राप्त गरी सकेका पुरुषको स्थिति हो , यसमा प्राप्त भएर मोहित हुँदैनन् , फेरि अन्तकालमा पनि यस योगनिष्ठामा (असल आचरणमा) स्थित भएर ब्रह्मानन्द परम पदमा प्राप्त हुन्छन् ।

ॐ तत्सदिति श्रीमदभागवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णअर्जुनसंवादे साख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भगवतगीता

तृतीयोध्यायः

अर्जुन उवाच

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥१॥

भा.टी.- भगवान श्रीकृष्णको यस्तो आज्ञा सुनेर त्यहाँ उपरान्त अर्जुनले भगवानका सामुन्ने विनयपूर्वक हात जोडेर यो प्रश्न सोध्न लागे कि हे जनार्दन ! यदि कर्मादिका उपेक्षा ज्ञान हजुरको श्रेष्ठ माननीय छ भने त फेरि हे केशव ! मलाई यो भयङ्कर कर्मका जालमा किन लगेर बाँध्नु हुन्छ , अर्थात् ति अश्रेयी कर्ममा किन लगाउनु हुन्छ ।

व्यमिश्रेणैव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥२॥

भा.टी.- फेरि हजुरले यहाँ मिलेका जस्ता वचनले मेरो बुद्धिलाई मोहित जस्तो गराउनु हुन्छ । यस कारण त्यसमा एकै वस्तुको निश्चय गरेर आज्ञा गर्नुहोस कि जसमा मलाई कल्याण मिलोस् , म कल्याणकारक मार्गमा प्राप्त हुन सकूँ ।

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥३॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारका अर्जुनको प्रश्न सुनेर भगवान आज्ञा गर्नुहुन्छ हे निष्पाप अर्जुन ! यस लोकमा दुई प्रकारका निष्ठा म द्वारा पहिले भनिएको छ । ज्ञानीहरुको ज्ञानयोग र योगीहरुको निष्काम कर्मयोग ।

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥४॥

भा.टी.- तर कोही पनि मार्गका अनुसार स्वरुप देखि त्यागनलाई कति पनि आवश्यक छैन । किनभने मनुष्य न त कर्महरुलाई नगर्नाले निष्कर्मतामा प्राप्तै हुन्छन् । फेरि न कर्महरुलाई त्यागनाले मात्रै भगवत साक्षात्कार रुप सिद्धिमा प्राप्त हुन सक्दछन् ।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥५॥

भा.टी.- तथा सर्वथा कर्महरुका स्वरुपले त्याग हुन पनि सक्दैन , किनभने कोही पनि कुनै कालमा क्षणमात्र पनि कर्म नगरिकन रहन सक्दैन । निःसन्देह सबै (पुरुष)प्रकृतिदेखि उत्पन्न भएका गुणहरुद्वारा परवश भएर कर्म गर्दछन ।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥६॥

भा.टी.- यस निमित्त जो मुढबुद्धिवाला पुरुष कर्मेन्द्रियहरुलाई रोकेर इन्द्रियहरुका भोगलाई मनले चिन्तन गर्दै रहन्छ , त्यो मिथ्याचारी (दम्भी) भनिन्छ ।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥७॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! जो पुरुष मनले इन्द्रियहरुलाई वशमा गरेर अनाशक्त भएका कर्मेन्द्रियद्धारा कर्मयोगको आचरण गर्दछ त्यो श्रेष्ठ हो ।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥८॥

भा.टी.- यस निमित्त तिमी पनि शास्त्रविधिदेखि नियत गरेका स्वधर्मरुपी कर्मलाई गर , किनभने कर्म नगर्नाको अपेक्षा) कर्म नगर्नु भन्दा) कर्म गर्नु श्रेष्ठ हो । फेरि कर्म नगर्नाले तिम्रा शरीरको निर्वाह पनि सिद्ध हुन सक्दैन ।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थ कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥९॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! बन्धनका भएदेखि पनि कर्मलाई त्यागन योगय छैन, किनभने यज्ञार्थत् विष्णुका निमित्त गरिएको कर्मदेखि सिवाय यज्ञ अरु कर्ममा यो मनुष्य कर्मद्वारा बाधिन्छ । हे कुन्तिपुत्र अर्जुन ! आसक्तिदेखि रहित भएका उस परमेश्वरको निमित्तमा कर्मको राम्रा प्रकारले आचरण गर ।

सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥१०॥

भा.टी.- तथा कर्म नगर्नाले तिमी पापमा प्राप्त हुनेछौं , किनकि प्रजापति (ब्रह्मा) ले कल्पका आदिमा (पहिले) यज्ञ सहित प्रजाहरुको रचना गरेर भन्नुभयो कि यस्तो यज्ञद्वारा बृद्धि होला , अरु यो यज्ञ तिमीहरुलाई इच्छित कामनाहरुको फल दिने वाला पनि होलान् ।

देवान् भावयातानेन ते देवा भावयन्तु वः
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥११॥

भा.टी.- फेरि तिमीहरु यस यज्ञद्वारा देवताहरुको उन्नति गर , अनि ति देवताहरुले तिमीहरुको उन्नति गरुन् । यस प्रकारका आपसमा (आफ्नो कर्तव्य सम्झेर) उन्नति गर्दा परमकल्याण हुनेछ ।

इष्टान् भोगान् हिवो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्तेस्तेन एव सः ॥१२॥

भा.टी.- अनि यज्ञद्वारा बढाइएका देवताहरुले तिमीहरुका लागि (नमागीकन पनि) प्रिय भोगहरुलाई दिन्छन् । उनैद्वारा दिएका भोगादिलाई जो पुरुष उनलाई नदिइकनै आफूमात्रै भोग्दछ भने त्यो अवश्य पनि चोर हो ।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापाये पचन्त्यात्मकारणात् ॥१३॥

भा.टी.- कारण के भने यज्ञबाट बचेका शेष अन्नलाई खाने श्रेष्ठ पुरुष सबै पापहरुदेखि छुट्ट्दछन् । जो पापीजनहरु आफ्ना लागिनै पकाउँछन् । तिनीहरु पापलाई नै खान्छन् ।

अन्नाद्भवन्ति भुतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥१४॥

भा.टी.- किनभने सम्पुर्ण प्राणीहरु अन्नदेखि उत्पन्न हुन्छन् , फेरि त्यो अन्नको उत्पति बर्षाद अथवा जल देखि हुन्छ , त्यहि जल यज्ञ कर्म देखि हुनेवाला हो ।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ॥
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

भा.टी.-कर्मलाई तिमी वेदबाट उत्पन्न भएको जान , फेरि वेद अविनाशी परमात्मादेखि उत्पन्न भएको हो । यसैले सर्बव्यापी परम अक्षर त्यो परमात्मा सदा सर्वदा नै यज्ञमा प्रतिष्ठित छ ।

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥१६॥

भा.टी.- हे पार्थ ! जो पुरुष यस लोकमा यस प्रकारले चलाईएको सृष्टि चक्रका अनुसार बर्ताव अर्थात शास्त्र अनुसार व्यवहार गर्दैन भने त्यो ईन्द्रियहरुको सुखलाई भोग्ने भएका पापी पुरुष व्यर्थ नै जीवित रहेका छन् ।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥१७॥

भा.टी.- तर जो मनुष्य आत्मामै प्रिति गरेर आत्मामै तृप्त तथा आत्मामै संतुष्ट भएर रहन्छ , उसका लागिमा केही कार्य अर्थात कर्तव्य पनि छैन ।

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्यसर्व भुतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥१८॥

भा.टी.-किनभने यस संसारमा त्यो महापुरुषले गरेको कामको केहि प्रयोजन हुँदैन , नगर्नाले पनि केही प्रयोजन हुँदैन , अनि यसको सम्पूर्ण प्राणीहरुमा केही पनि स्वार्थको सम्बन्ध हुँदैन । तर पनि त्यसैद्वारा केवल लोक हितार्थ कर्म गरिन्छ ।

तस्मादसक्त सततं कार्य कर्म समाचार ।
अशक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥१९॥

भा.टी.- त्यस कारणले तिमी अनासक्त भएर निरन्तर कर्तव्य कर्मको राम्रो प्रकारसँग आचरण गर , किनभने अनासक्त पुरुष कर्म गर्दागर्दैमा परमात्मामा गएर मिल्दछ ।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि ॥२०॥

भा.टी.- यस्तै प्रकारले जनकादि ज्ञानी जनहरुपनि (आसक्ति रहित) कर्मद्वारा नै परम सिद्धिमा प्राप्त भए , यसका निम्ति फरक लोक संग्रह देख्दा पनि तिमीं कर्म गर्नमा योग्य छौ ।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं करुते लोकस्तदनुवर्तते ॥२१॥

भा.टी.- किनभने श्रेष्ठ पुरुषले जो जो आचरण गर्दछन् अरु पुरुष पनि उसका नै अनुसार व्यवहार गर्दछन् । ति पुरुषले जो जो काम गरि दिन्छन् अरु पनि उसैका अनुसार गर्छन् ।

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥२२॥

भा.टी.- यसका लागि हे अर्जुन ! मलाई तीनै लोकमा केही पनि कर्तव्य छैन । तर प्राप्त हुन योग्य वस्तु अप्राप्य हुदैन । तर पनि म कर्ममा नै रहेर व्यवहार गर्छु ।

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥२३॥

भा.टी.- किनभने म सावधान भएर कदाचित कर्ममा लागिन भने त हे अर्जुन ! सबै प्रकारबाट मनुष्य मेरा व्यवहार अनुसारै चल्दछन् अर्थात उनीहरु पनि मेरा व्यवहारको अनुशरण गर्दछन् ।

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्या कर्म चेदहम् ।
सङ्करस्य च कर्तास्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥२४॥

भा.टी.- यदि मैले कर्म गरिन भने लोकधर्म लोप भएर जान्छ । धर्म लोप भई सकेपछि प्रजाको नाश हुन जान्छ । अनि विमर्यादा भएर सनातन धर्मको नष्ट भईसकेपछि दुराचार उपद्र बढेर वर्णसङ्कर पनि हुन्छ । अनि आफ्नो प्रजा आफैंले नष्ट गरेको प्रतित हुनेछ ।

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥२५॥

भा.टी.- यसका लागी हे भारत ! आत्माज्ञानी जनले पनि कर्म गर्न उचित छ । किनभने लोक शिक्षाका निमित्तमा हे अर्जुन ! कर्ममा आसक्त भएर अज्ञानीहरुले जस्तो कर्म गर्दछन् , त्यस्तै विद्वान् अर्थात् ज्ञानीहरुले कर्म गर्नु पर्दछ । त्यसले धर्मको बाटो र लोक मर्यादा दुबै रहन्छ ।

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥२६॥

भा.टी.- यसका लागि ज्ञानी पुरुषको यो कर्तव्य हो कि कर्महरुमा आसक्ति भएका अज्ञानी पुरुषहरुका बुद्धिमा भ्रम अर्थात कर्ममा अश्रद्धा उत्पन्न नगराउन् । तर आफै परमात्माका स्वरुपमा स्थित भएर सम्पूर्ण कर्म राम्रा प्रकारसँग गरि अज्ञानी पुरुषलाई पनि उस्तै प्रकारसँग कर्म गराउन् ।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणौः कर्माणि सर्वशः ।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥२७॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! वास्तवमा सम्पूर्ण कर्महरु प्रकृतिका गुणादिद्वारा गरिएका छन् । तर अहङ्कारले मोहित अन्त:करण भएका पुरुषहरु म कर्ता हूँ भन्ने यस्तो घमण्ड सदा मनमा राख्दछन् ।

तत्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥२८॥

भा.टी.- तर हे महाबाहो ! गुणविभाग र कर्मविभागको तत्वलाई जान्ने ज्ञानी पुरुष सम्पूर्ण गुण गुणादिमा व्यवहार गर्दछन् , यस्तो मानेर कहिले पनि आसक्त हुँदैनन् ।

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥२९॥

भा.टी.- फेरि प्रकृतिका गुणादिले मोहित भएका पुरुषहरु गुण र कर्महरुमा आसक्त हुन्छन् । ति राम्रा प्रकारसँग नसम्झने भएका मूर्खहरुलाई राम्रा प्रकारसँग जान्ने ज्ञानी पुरुषहरुले चलायमानं नगराउनु ॥

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥३०॥

भा.टी.- यसका लागि हे अर्जुन ! तिमी ध्याननिष्ठ चित्तले सम्पूर्ण कर्महरुलाई ममा नै समर्पण गरेर आशादेखि ममतादेखि पनि रहित भएर सन्ताप रहित भई युद्ध गर ।

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयोन्तो मुच्यते तेऽपि कर्मभि ॥३१॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! जो कोही पनि दोषबुद्धिले रहित भएर फेरि श्रद्धाले युक्त भई सदासर्वदा नै मेरा यस मतका अनुसार व्यवहार गर्दछ भने त्यो पुरुष कर्मादिदेखि छुटेर जानेछ ।

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धिनष्टानचेतसः ॥३२॥

भा.टी.- फेरि जो दोषदृष्टिवाला मूर्खहरु यो मेरा मतका अनुसार व्यवहार गर्दैन भने ती सर्वज्ञानदेखि मोहित चित्तवालाहरुलाई तिमीले कल्याणदेखि भ्रष्ट भए अर्थात् कल्याणकारक मार्गदेखि भ्रष्टै भए भन्ने जान ।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥३३॥

भा.टी.- किनकि सम्पूर्ण प्राणीहरु प्रकृतिमै गएर कर्म गर्दछन् । ज्ञानवाला पनि आफ्ना प्रकृतिका अनुसार चेष्टा गर्दछन् भने फेरि यस विषयमा कसैको ढिपीले के गर्छ ।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥३४॥

भा.टी.- यसका लागि मनुष्यको यो कर्तव्य हो कि कर्मेन्द्रिय र ज्ञानेन्द्रियका अर्थमा अर्थात सबै ईन्द्रियहरुका भोगमा स्थित भएका जो रोग द्वेषादि छन् । तिनका वशमा नहुनू , किनभने यसका तिनीहरु सबै कल्याणमार्गमा विघ्न गराउनेवाला महान शत्रु हुन् ।

श्रेयान् स्वधर्मोविगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥३५॥

भा.टी.-यसका लागि तिनलाई जितेर सावधान भई स्वधर्मको आचरण गर्नु , किनभने राम्रा प्रकारसँग आचरण गरेका दोस्राका धर्मदेखि अत्यन्त मलिन गुणरहित नै भएपनि आफ्नो धर्मनै अति उत्तम छ। आफ्ना धर्ममा रहेर मर्नु पनि कल्याणकारक नै हुन्छ । दोस्राको धर्म चाहे जस्तै ठुलो किन नहोस तर त्यो भयकारक अर्थात डरलाग्दो नै हुन्छ।

अर्जुन उवाच

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपिवार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥३६॥

भा.टी.- त्यहाँ उपरान्त यस्ता वचन सुनेर अर्जुन सोद्धछन् कि हे कृष्ण ! फेरि यो पुरुष बलात्कारले लगाइएको जस्तो नचाहेर पनि कसद्वारा प्रेरित भई पापको आचरण गर्दछ ।

श्रीभगवानुवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ॥३७॥

भा.टी.- यस प्रकार अर्जुनको प्रश्न सुनेर भगवान श्रीकृष्ण आज्ञा गर्नु हुन्छ कि हे अर्जुन ! रजोगुण देखि उत्पन्न भएको यो काम नै क्रोध हो, यो नै महा अशन (अग्निका झै भोगादिले तृप्त नहुने भएका) ठूलो पापात्मा (पाप) हो , यस विषयमा यसलाई तिमीले वैरी भन्ने जान्नु ।

धूमेनाव्रियते वन्हिर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥३८॥

भा.टी.- जस्तै धुवाँले अग्नि र मयलले ऐना ढाकिन्छ , फेरि जसरी गर्भस्थ बालक सालले ढाकिन्छ , उस्तै प्रकार सँग कामनाद्वारा यो ज्ञान ढाकिएको छ ।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरुपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥३९॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! यो अग्निको जस्तो कहिले पनि तृप्त नहुनेवाला कामरुप ज्ञानीहरुका नित्य वैरीले यो ज्ञानलाई ढाकेर राखेको छ ।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥४०॥

भा.टी.- ईन्द्रियहरु मन र बुद्धि यसका वासस्थान भनिएका छन् , फेरि यो काम यिनै मन बुद्धि र ईन्द्रियहरुद्धारा नै ज्ञानलाई आच्छादित गरेर यस जीवात्मालाई मोहित गर्दछन् ।

तस्मात्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥४१॥

भा.टी.- यसका लागि हे अर्जुन ! तिमी पहिले ईन्द्रियहरुलाई वशमा गरेर ज्ञान र विज्ञानलाई नाश गर्नेवाला यो पापीलाई निश्चय पूर्वक मार ।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥४२॥

भा.टी.- फेरि तिमी सम्झ कि ईन्द्रियहरु श्रेष्ठ बलवान र शूक्ष्म भनिन्छ । अनि ईन्द्रियहरुदेखि मन र मनदेखि बुद्धि पर छ । अनि फेरि बुद्धिदेखि पनि अत्यन्तै पर आत्मा भन्ने वस्तु छ ।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महावाहो कामरुपं दुरासदम् ॥४३॥

भा.टी.- यस प्रकार बुद्धिदेखि परको अर्थात शूक्ष्म र सबै प्रकारबाट बलवान र श्रेष्ठ आफ्ना आत्मालाई जानेर फेरि

बुद्धिद्वारा मनलाई वशमा गरेर हे अर्जुन ! आफ्नो शक्ति सम्झेर यस दुर्जय कामरुप बलवान शत्रुलाई मार ।

ॐ तत्सदिति श्रीमदभागवद्‌गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णअर्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

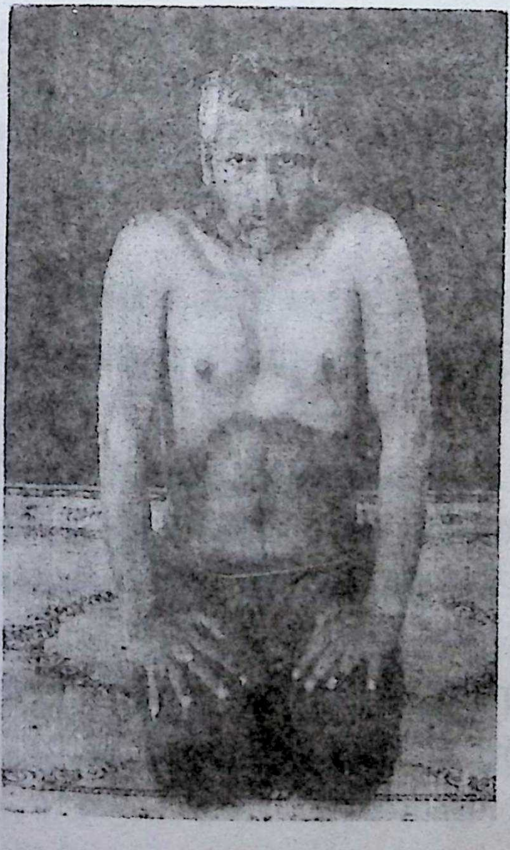

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भगवद्गीता

चतुर्थोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥१॥

भा.टी.- त्यहाँ उप्रान्त भगवान श्रीकृष्ण आज्ञा गर्नु हुन्छ , हे अर्जुन ! मैले यो अविनाशी योगलाई कल्पका आदिमा सूर्यलाई बताएको थिएँ । फेरि सूर्यले पनि आफ्ना पुत्र मनुलाई बताउनु भएको थियो । अनि फेरि मनुले पनि आफ्ना छोरा इक्ष्वाकुलाई बताउनु भएको थियो ।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ॥२॥

भा.टी.- यस प्रकारले परम्परादेखि प्राप्त भएको यस योगलाई राजर्षिहरुले जानेका थिए । तर हे अर्जुन ! यो योग फेरि धेरै कालदेखि यस पृथ्वी लोकमा प्रायः लोप नै भैसकेको थियो ।

स एवायं मया तेऽद्ययोगः प्रोक्त : पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥३॥

भा.टी.- त्यो नै पुरातन योग अब मैले तिमीलाई बताई दिएको हूँ । किनभने तिमी मेरा भक्त र प्रिय सखा (

साथी) छौ । यस निमित्त फेरि यो योग अत्यन्त उत्तम र रहस्यमय अर्थात अत्ति नै मर्मको विषय छ ।

अर्जुन उवाच

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥४॥

भा.टी.- यसप्रकार भगवान श्रीकृष्णको वचन सुनेर अर्जुनले यो प्रश्न गरे कि हे भगवान ! तपाईको जन्म त आधुनिक काल अर्थात आजकाल नै भएको हो , अनि फेरि सूर्यको जन्म भएको धेरै काल वितिसक्यो , यसका लागि योगलाई (कल्पका) आदिमा तपाइले सूर्यलाई बताउनु भयो भन्ने कुरा यो मैले कुन प्रमाणबाट सिद्ध गरेर जानूँ कि यो योग तपाईले सूर्यलाई बताएर परम्परा चलिआयो ।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं बेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥५॥

भा.टी.- अर्जुनका शंकाले युक्त भएका यस्ता प्रश्न सुनेर श्रीकृष्ण आज्ञा गर्नुहुन्छ कि हे अर्जुन ! मेरो र तिम्रो धेरै नै जन्म भइसक्यो । तर , हे परंतप ! ति सबैलाई तिमी जान्दैनौ तर म त ति सबै जान्दछु ।

अजोऽपिसन्नव्यात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥६॥

भा.टी.- अनि फेरि मेरो जन्म प्रकृत मनुष्यहरुको जस्तो छैन , किनकि म अविनाशी स्वस्वरुप अजन्मा हुनाले पनि र फेरि सबै

प्राणीहरुको ईश्वर हुनाले पनि आफ्नी प्रकृतिलाई अधीनमा अर्थात् वशमा गरेर योगमायादेखि प्रकट भईरहन्छु ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥७॥

भा.टी.- हे भरतवंशी अर्जुन ! जब जब धर्मको नाश र अधर्मको बृद्धि हुन्छ तब तब नै म आफ्ना रुपको रचना गर्छु अर्थात म अवतार लिएर प्रकट हुन्छु ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥८॥

भा.टी.- किनभने साधु पुरुषहरुको उद्धार गर्नका लागि र दूषित कर्म गर्ने दुष्टात्मा पुरुषहरुको नाश गर्नका लागि अनि फेरि धर्मको स्थापना गर्नका लागि युगयुगमा म सधैं अवतार लिएर प्रकट हुन्छु ।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेतिसोऽर्जुन ॥९॥

भा.टी.- यसका लागि हे अर्जुन ! मेरो त्यो जन्म र कर्म दिव्य अर्थात अलौकिक छ । यसप्रकार जो पुरुष तत्वदेखि जान्दछन् ति पुरुष यो शरीरलाई त्यागिसकेपछि फेरि दोस्रो जन्म ग्रहण गर्दैनन् । तर ति मैमा समाहित हुन्छन् ।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥१०॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! पहिले पनि राग भए र क्रोधदेखि रहित भई अनन्य भावले मैमा स्थित गर्नेवाला मेरा शरणमा परेका धेरै नै पुरुषहरु ज्ञानरुपी तपले पवित्र भई मेरा रुपमा समाहित भइ सकेकाछन् ।

ये यथा मां प्रद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥११॥

भा.टी.- किनभने हे अर्जुन ! जो मलाई जस्तो प्रकारले भजन गर्दछन् म पनि तिनीहरुलाई त्यस्तै प्रकारले भज्दछु । यस रहस्यलाई जानेर नै बुद्धिमान् मनुष्यहरु सर्व प्रकारबाट मेरा मार्गका अनुसार व्यवहार गर्दछन् ।

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धि यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥१२॥

भा.टी.- फेरि जो मेरा तत्वलाई जान्दैनन् ति पुरुष यो मनुष्य लोकमा कर्मका फललाई चाहेर देवताहरुको पूजा गर्दछन् । फेरि उनका कर्महरुदेखि उत्पन्न भएको सिद्धि पनि छिटै हुन्छ । तर तिनीहरुलाई मेरो प्राप्ति हुँदैन । यसका लागि तिमी सर्व प्रकारबाट मेरो भजन गर ।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम् ॥१३॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! गुण र कर्मका विभागले ब्राह्मण क्षत्रीय, वैश्य र शुद्र मैद्धारा रचना गरेका हुन, तिनको कर्तालाई पनि र म परमेश्वर अविनाशीलाई तिमी अकर्ता नै जान ।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥१४॥

भा.टी.- कर्महरुको फलमा मेरो प्रीति छैन । यस निमित्त मलाई कर्ममा लेपायमान गर्दैनन् । फेरि जो मेरो यस तत्वलाई जान्दछन् ति पनि कर्मदेखि कहिले पनि बाँधिदैनन् ।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतिरं कृतम् ॥ १५॥

भा.टी.- अनि पहिले भएका मुमुक्षु पूरुषहरुद्वारा पनि यसै प्रकारसँग जानेर नै कम गरिएको थियो । यस निमित्त तिमी पनि पूर्वजहरुद्वारा पहिलेदेखि सँधै गरिएका कर्मलाई नै गर ।

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१६॥

भा.टी.- परन्तु कर्म के हो फेरि अकर्म पनि के हो यस्तो यस विषयमा बुद्धिमान पुरुष पनि मोहित भएका छन् । त्यो कर्म अर्थात् कर्महरुको तत्व तिम्रा लागि राम्रा प्रकार सँग बताईदिउला कि जसलाई जानेर तिमी अशुभ संसार बन्धनदेखि छुट्नेछौ ।

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणोगतिः ॥१७॥

भा.टी.- कर्मको स्वरुप पनि जान्नु पर्छ , फेरि अकर्मको स्वरुप पनि जान्नु पर्छ , अनि निषिद्ध कर्मको स्वरुप पनि जान्नै पर्छ । किनकि कर्मको गति अत्यन्त गहन छ ।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
सबुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥१८॥

भा.टी.- जो पुरुष कर्ममा अर्थात अहङ्कार रहित भएर सम्पूर्ण चेष्टाहरुमा अकर्म अर्थात् उनको नहुनु पनि देख्ने अरु जो पुरुष अकर्ममा अर्थात पनि देख्ने अज्ञानी पुरुषद्वारा गरिएका सम्पूर्ण क्रियाहरुको त्यागमा पनि कर्मका अर्थात् त्यागरुप क्रियालाई देख्ने त्यो पुरुष मनुष्यहरुमा बुद्धिमान् हो । फेरि त्यो योगी र सम्पूर्ण कर्महरुलाई गर्नेवाला हो ।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥१९॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! जसको सम्पूर्ण कार्य कामना र संकल्पदेखि रहित छ यस्तो त्यो ज्ञानरुपीअग्निद्वारा भष्म भएका कर्मवाला पुरुषलाई ज्ञानीजन पनि पण्डित भन्दछन् ।

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ॥२०॥

भा.टी.- अरु फेरि हे अर्जुन ! जो पुरुष सांसारिक आश्रयदेखि रहित भएर सदा परमानन्द परमात्मामा तृप्त छ , त्यो कर्महरुको फलसँग अर्थात कर्तव्य अभिमानलाई त्यागेर कर्ममा राम्रा प्रकारले वर्ताव गरेर पनि केहि गर्न सक्दैन ।

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम् ॥२१॥

भा.टी.- फेरि जसले अन्त:करण र शरीर जितेको छ , फेरि जसले सम्पूर्ण भोगहरुको सामाग्री त्यागी दिएको छ, यस्ता आशारहित पुरुषहरु केवल शरीर सम्बन्धी कर्महरुलाई गर्दागर्दै पनि पापमा प्राप्त हुँदैनन् ।

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निवध्यते ॥२२॥

भा.टी.- अनि फेरि आफैंआफ जुन चिज पनि आएर प्राप्त भएको छ उसैमा सन्तुष्ट रहनेवाला र हर्ष शोकादि द्वन्दहरुदेखि अतीत भएर फेरि ईर्ष्यादेखि रहित भएका पुरुष नै सबै कर्महरु गरेर पनि बाँधिदैनन् ।

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥२३॥

भा.टी.- किनभने आशक्ति देखि निवृत्त भएको छ आत्मा जसको आत्माज्ञानमा स्थित भएको छ स्थिर भएर चित्त जसको त्यस्ता पुरुष नै यज्ञ गर्नका निमित्तमा आचरण गर्दा छँदा मुक्त पुरुषका सम्पूर्ण कर्महरु नष्ट भएर जान्छन् ।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥२४॥

भा.टी.- ति यज्ञका लागि आचरण गर्ने भएका पुरुषहरु मध्यमा कोही कोही त यस्ता भावले यज्ञ गर्दछन् कि अर्पण (स्रुवा अर्थात् सुरो आदि पनि) ब्रह्म हो , अरु ब्रह्मरुप अग्निमा ब्रह्मरुप कर्ताद्वारा जो वस्तुको हवन गरिन्छ त्यो पनि ब्रह्मै हो । यस निमित्त ब्रह्मरुप कर्ममा समाधिस्थ भएका कर्ता पुरुषका तर्फबाट जो प्राप्त हुन योग्य छ त्यो पनि ब्रह्मै हो ।

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥२५॥

भा.टी.- फेरि दोस्रा योगीजनहरु देवताका पूजनरुप यज्ञलाई नै राम्रा प्रकारसँग उपासना गर्दछन् अरु फेरि दोस्रा महात्मा ज्ञानीजन परब्रह्म परमात्मारुप अग्निमा यज्ञद्वारा यज्ञलाई नै हवन गर्दछन् ।

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥२६॥

भा.टी.- फेरि अरु योगीजनहरु श्रोतादिक सबै ईन्द्रियहरुलाई संयम अर्थात् स्वाधिनतारुप अग्निमा हवन गर्दछन्, अर्थात ईन्द्रियहरुका विषयलाई रोकेर आफ्ना वशमा लिन्छन् । फेरि दोस्रो योगीहरु शब्दादि विषयहरुलाई ईन्द्रियरुपी अग्निमा हवन गर्दछन् । राग द्वेष रहित इन्द्रियहरुद्वारा विषयहरुलाई ग्रहण गरेर पनि भस्म रुप गरिदिन्छन् ।

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥२७॥

भा.टी.- अनि फेरि दोस्रा योगीजनहरु सम्पूर्ण ईन्द्रियहरुका चेष्टादि र प्राणादिका व्यापारको ज्ञानले प्रकाशित भएका परमात्माको स्थित रुप योगाग्निमा हवन गर्दछन् ।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥२८॥

भा.टी.- अरु दोस्रा कति पुरुषहरु ईश्वर अर्पण बुद्धिले लोक सेवामा धन लगाउने अर्थात् अर्पण गर्नेवाला छन् । अरु कति पुरुषहरु अष्टाङ्गयोगरुपी यज्ञ गर्नेवाला छन् । फेरि अरु दोस्रा पुरुषहरु अहिंसादि अत्यन्त तीक्ष्ण व्रतादिमा युक्त भएर यत्नशील पुरुष भगवानका नामको जप र भगवत प्राप्ति विषयका शास्त्रहरुको अध्ययनरुपी ज्ञानयज्ञ गर्नेवाला छन् ।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥२९॥

भा.टी.- फेरि अरु दोस्रा योगीजनहरु अपान वायुमा प्राण वायुलाई हवन गर्दछन् । फेरि उस्तै प्रकारले अन्य योगीजनहरु प्राण वायुमा अपान वायुलाई हवन गर्दछन् । अनि अरु योगीजनहरु प्राण र अपान वायुको गतिलाई रोकोर प्राणायाममा परायण हुन्छन् ।

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥३०॥

भा.टी.- अरु दोस्रा नियमित आहार गर्ने भएका योगीजनहरु प्राणलाई प्राणैमा हवन गर्दछन् । यस प्रकार यज्ञादिकाद्वारा नाश गरेको छ पाप जस्को यस्ता यी सबै पुरुषहरु यज्ञादिलाई जान्नेवाला छन् ।

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥३१॥

भा.टी.- फेरि हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन ! यज्ञहरुको परिणामरुपी ज्ञनामृतलाई भोग्नेवाला योगीजन सनातन परब्रह्म परमात्मामा प्राप्त हुन्छन् । अरु यज्ञरहित पुरुषलाई त त्यो मनुष्यलोक सुखदायक हुँदैन । फेरि परलोक कसरी सुखदायक हुन सक्छ अर्थात् कदापि हुँदैन ।

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥३२॥

भा.टी.- यस्ता धेरै प्रकारका यज्ञ वेदको वाणीमा विस्तार गरिएका छन् । ति सबै शरीर मन र ईन्द्रियहरुको क्रियाहरुद्वारा नै उत्पन्न हुनेवाला जान्नु । यस प्रकार तत्वदेखि जानेर निष्काम कर्मयोगद्वारा संसार बन्धनदेखि मुक्त हुनेछौ ।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप ।
सर्व कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥३३॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! सांसारीक वस्तुहरुदेखी सिद्धहुनेवाला ज्ञानरुपी यज्ञ सबै प्रकारले श्रेष्ठ हो । किन भने हे पार्थ ! सम्पूर्ण यावन्मात्र कर्म ज्ञान शेष हुन्छ अर्थात् ज्ञान उनको पराकाष्टा हो ।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥३४॥

भा.टी.- यस निमित्त तत्वलाई जान्नेवाला ज्ञानीपुरुषहरु देखि राम्रा प्रकारसँग दण्डवत् प्रणाम तथा सेवा र निष्कपट भावले प्रश्नद्वारा त्यस ज्ञानलाई जान । ती कर्मलाई जान्नेवाल ज्ञानीजन तिमीलाई त्यो ज्ञानको उपदेश गर्नेछन् ।

यज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्मात्मन्यथो मयि ॥३५॥

भा.टी.- किनकि जसलाई जानेर तिमी फेरि यस प्रकार मोहमा प्राप्त हुनेछैनौं । फेरि हे अर्जुन ! जुन ज्ञानकाद्वारा सर्वव्यपि अनन्त

चेतन रुप भएका आफ्ना अन्तर्गत समष्टि बुद्धिका आधारले सम्पूर्ण भूतादिलाई देखिन्छ । फेरि उसका उप्रान्त मैमा अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरुपमा एकैभाव भएर सच्चिदानन्दमय नै देख्नेछौ ।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यःपापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥३६॥

भा.टी.- फेरि यदि तिमी सबै पापीदेखि पनि धेरै पाप गर्नेवाला छौ तापनि ज्ञानरुप नाउद्वारा निःसन्देह सम्पूर्ण पापदेखि रास्रा प्रकारसँग तर्नेछौ ।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥३७॥

भा.टी.- किनभने हे अर्जुन ! जस्तै प्रज्वलित अग्निले दाउरालाई भष्ममय गरिदिन्छ उस्तै प्रकार ज्ञानरुप अग्निले सम्पूर्ण कर्मलाई भष्म गरिदिन्छ ।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥३८॥

भा.टी.- यस निमित्त यो क्षणभंगुर संसारमा ज्ञानका समान पवित्र गर्नेवाला निःसन्देह केहि पनि छैन । त्यस ज्ञानको कति कालदेखि आफैंआफ समत्व बुद्धिरुप योगद्वारा राम्रा प्रकारसंग शुद्धान्तःकरण भएका पुरुषहरु आत्मामा अनुभव गर्दछन् ।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥३९॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! जितेन्द्रिय तत्पर भएका श्रद्धावान पुरुषलाई ज्ञान प्राप्त हुन्छ , ज्ञान प्राप्त भएर तत्क्षणमा (भगवत प्राप्तरुपी) परम शान्तिमा गएर प्राप्त हुन्छन् ।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ४०॥

भा.टी.- अनि पछि हे अर्जुन ! भगवत विषयलाई नजान्नेवाला र श्रद्धारहित अनि संशययुक्त पुरुष परमार्थदेखि भ्रष्ट भएर जान्छन् । फेरि तिमीमा पनि संशययुक्त पुरुषका लागि न त सुख छ , न यो लोक छ अर्थात् न परलोक छ , अर्थात् यो लोक र परलोक दुबै उसका लागि भ्रष्ट भएर जान्छ ।

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ॥४१

भा.टी.- हे धनञ्जय ! अनि समत्व बुद्धिरुपी योगद्धारा भागवत अर्पण गरिदिएको छ सम्पूर्ण कर्म जसले , फेरि ज्ञानद्वारा नष्ट भएको छ सम्पूर्ण संशय यस्ता परमात्मा परायण पुरुषलाई कर्मले कहिले पनि बाँध्दैन ।

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्वेनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥४२॥

भा.टी.- यसैले हे भरतवंशी अर्जुन ! तिमी समत्व बुद्धिरुप योगमा स्थित भएर अर्थात् बसेर अज्ञान देखि उत्पन्न भएका हृदय कमलमा स्थिर भएको यस संशयलाई ज्ञानरुपी तलवारले काटेर युद्ध गर्नका निमित्त उठ खडा होउ ।

ॐ तत्सदिति श्रीमदभागवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णअर्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम चतुर्थोऽध्याय: ॥४॥

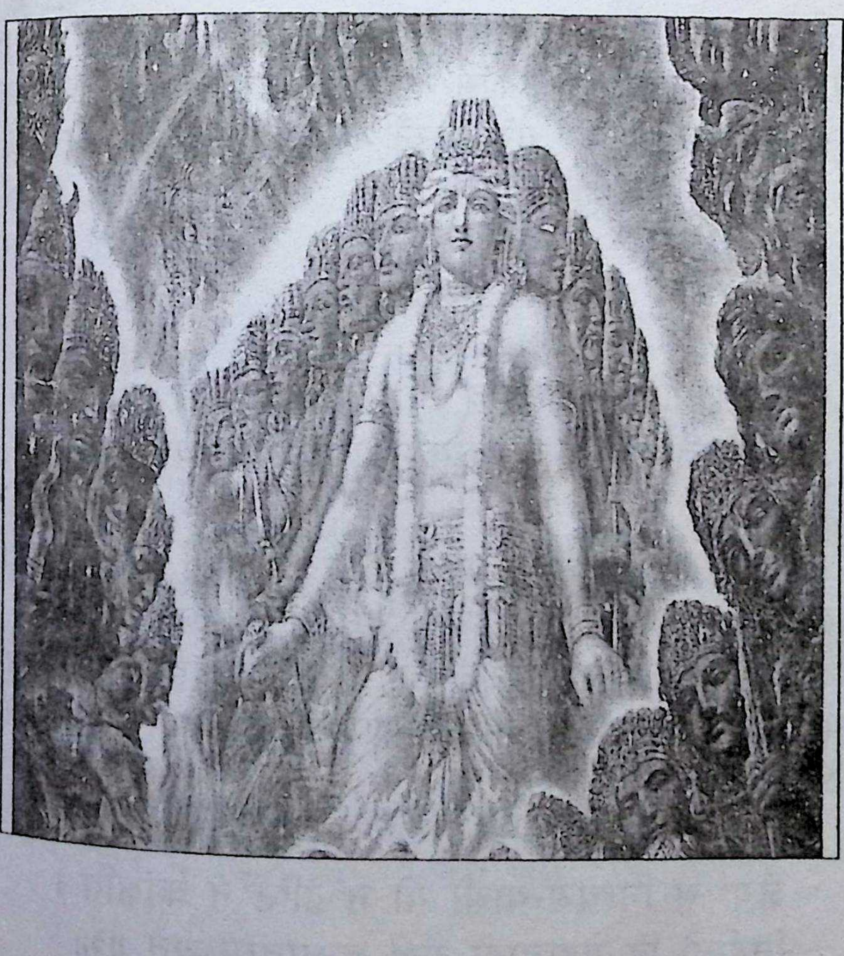

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भगवतगीता

पञ्चमोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

संन्यासं कर्माणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रुहि सुनिश्चितम् ॥१॥

भा.टी.- त्यहाँ उप्रान्त अर्जुन विन्ति गर्नुहुन्छ कि हे कृष्ण ! तपाई कर्महरुको सन्यास र निष्काम कर्मयोगको पनि प्रशंसा गर्नुहुन्छ। यी दुई मध्यमा निश्चय गरेर एउटै कल्याणकारक श्रेष्ठ जुन छ त्यसलाई मेरा निमित्त भन्नुहोस् ।

श्रीभगवानुवाच

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयागो विशिष्यते ॥२॥

यस्ता प्रकारका अर्जुनका प्रश्न सुनेर भगवान श्रीकृष्ण आज्ञा गर्नुहुन्छ कि हे अर्जुन ! कर्महरुको सन्यास र निष्काम कर्मयोग यी दुबै मार्ग परमकल्याण कारक छन् । तर ति दुईमा पनि कर्मको सन्यास देखि निष्काम कर्मयोग साधना सुगम र सजिलो हुनाले श्रेष्ठ छ ।

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥३॥

भा.टी.- यस कारण हे अर्जुन ! जो पुरुष न कसैदेखि द्वेष अर्थात वैरत्व गर्दछ , फेरि न कसैसित आकांक्षा (प्रीति) गर्दछ , त्यो निष्काम कर्मयोगी सधैं सन्यासी नै सम्झनमा योग्य हो किनभने राग द्वेष द्वन्दरहित भएका पुरुष सुखपूर्वक संसाररुपी बन्धनदेखि मुक्त हुन्छन् ।

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितःसम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥४॥

भा.टी.- अनि फेरि हे अर्जुन ! माथि भनिएका सन्यास र निष्काम कर्मयोगलाई मूर्खहरु अलग अलग फल दिने भनेर भन्देछन् , यस्तो पण्डित अलग भन्दैनन् किनभने यी दुई मध्यमा एकमा पनि राम्रा प्रकारले रहेको छ भने पनि दुवै प्रकारको फलस्वरुप परमात्मामा प्राप्त हुन्छ ।

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥५॥

भा.टी.- अनि ज्ञानीहरुद्वार जुन परम धाम प्राप्त हुन्छ , फेरि निष्काम कर्मयोगीहरु पनि त्यहि प्राप्त हुन्छ । यस निमित्त , जो पुरुष ज्ञानयोग र निष्काम कर्मयोगलाई फलस्वरुप एकै देख्दछ त्यो पुरुष नै यथार्थ देख्ने हो ।

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥६॥

भा.टी.- तर हे अर्जुन ! निष्काम कर्मयोग बिना सन्यास अर्थात मन ईन्द्रियहरु र शरीरद्वारा हुनेवाला सम्पूर्ण कर्महरु कर्तापनदेखि त्याग प्राप्त गर्नु बडो कठिन हो , फेरि भगवंत स्वरुपलाई मनन गर्नेवाला निष्काम कर्मयोगी परब्रह्म परमात्मा शीघ्र प्राप्त हुन्छ ।

योगयुक्तो विशुद्धात्माविजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥७॥

भा.टी.- तथा जसले शरीर वशमा गरेको छ यस्तो जितेन्द्रिय तथा विशुद्ध अन्तःकरणवाला अनि फेरि सम्पूर्ण प्राणीहरुको आत्मा स्वरुप परमात्मामा एकभाव भएर निष्काम कर्मयोगी कर्म गर्दागर्दै कर्ममा लिप्त हुदैनन् ।

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यञ्श्रृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ॥८॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥९॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! तत्वलाई जान्ने भएका सांख्ययोगी त देख्दा, सुत्दा, स्पर्श गर्दा, हिड्दा, खाँदा, ग्रहण गर्दा , त्याग गर्दा आँखा खोल्दा , चिम्लिदा पनि सबै ईन्द्रियहरुले आफ्ना आफ्ना अर्थमा अर्थात कर्ममा वर्ती रहेका छन् भन्ने यस्तो सम्झेर निःसन्देह यस्तो मान्दछन् कि म त केही पनि गर्दिन ।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥१०॥

भा.टी.- परन्तु हे अर्जुन ! देहाभिमानीहरुद्वारा यो साधना हुनु अत्यन्त कठिन छ । अरु निष्काम कर्मयोग सुगम छ । किनभने जुन पुरुष सबै कर्मलाई परमात्मालाई अर्पण गरेर फेरि आसक्तिलाई त्याग गरी कर्म गर्छ त्यो पुरुष जलका कमलपत्र सरी पापदेखि लिपायमान हुँदैन, अर्थात जस्तै तलाउको जलमा डुबेर रहेको कमलको पात पानीले नभिजी ओवानै रहन्छ उस्तै प्रकार ।

कायेन मनसा बुद्धचा केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥११॥

भा.टी.- यस निमित्त निष्काम कर्मयोगी अर्थात ममत्वबुद्धिदेखि रहित केवल ईन्द्रिय मन बुद्धि र शरीरद्वारा पनि आसक्तिलाई त्यागेर अन्तःकारणलाई शुद्ध गर्न नै कर्म गर्दछन् ।

युक्तःकर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोतिनैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥१२॥

भा.टी.- यस निष्काम कर्मयोगी कर्महरुको फललाई परमेश्वरमा अर्पण गरेर भगवतप्राप्ति रुप शान्तिमा प्राप्त हुन्छ । सकामी पुरुष फलमा आसक्त भएर कामनाद्वारा बाँधिन्छन् । यस निमित्त निष्काम कर्मयोग नै उत्तम हो ।

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥१३॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! जसले अन्तःकरण वशमा गरेको छ यस्तो सांख्ययोगलाई आचरण गर्नेवाला पुरुष त निःसन्देह नगर्दै र फेरि

नगराउदै नौ द्वारवाला शरीररुपी घरमा सबै कर्महरुलाई मनले त्यागेर अर्थात इन्द्रियहरुलाई इन्द्रियका अर्थादिमा वर्तन्छन् । यस्तो मानेर आनन्दपूर्वक सच्चिदानन्दघन परमात्माको स्वरुपमा स्थित रहन्छन् अर्थात बस्दछन् ।

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥१४॥

भा.टी.- फेरि त्यसमा परमेश्वर पनि भूत प्राणीहरुका न कर्तापनको न कर्मका फलैको संयोगले वास्तवमा रचना गर्दछ। परन्तु परमात्माका स्वभावदेखि प्रकृति नै बर्ताव गर्दछे अर्थात गुणै गुणमा वर्ती रहेको छ ।

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥१५॥

भा.टी.- सर्वव्यापी परमात्मा न कसैको पाप कर्मलाई र न कसैको शुभ कर्मलाई नै ग्रहण गर्दछन् । तर मायाद्वारा ज्ञान ढाकिएको छ । यसै कारणले गर्दा सब जीव मायामा मस्त परेर मोहित भै रहेका छन् ।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥१६॥

भा.टी.- तर जसको त्यो अन्तःकरणको अज्ञान आत्माज्ञानद्वारा नाश भै गयो भने त्यसको त्यो ज्ञान सूर्यका (किरण) जस्तो भएर त्यो सच्चिदानन्दघन

परमात्मालाई प्रकाश गर्दछ अर्थात परमात्माका स्वरुपलाई साक्षात्कार गर्दछ ।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥१७॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! जसको मन तद्रूप छ, फेरि जसको एकै भावले निरन्तर उसै सच्चिदानन्दघन परमात्मामा नै स्थित छ यस्ता तत्परायण पुरुष ज्ञानद्वारा पापदेखि रहित भएर अपुनरावृत्तिमा अर्थात परमात्माका गतिमा प्राप्त हुन्छन् ।

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥१८॥

भा.टी.- यस्तै ति ज्ञानीजन विद्या र विनयले युक्त भएका ब्राह्मण , गाई , हात्ती , कुकुर र चण्डालमा पनि समभावले हेर्नेवाला नै हुन्छन् ।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥१९॥

भा.टी.- यस निमित्त जसको मन समत्वभावमा स्थित छ उनले यसै जीवित अवस्थामा नै सम्पूर्ण संसार जितेर लिए, किनभने सच्चिदानन्दघन परमात्मा निर्दोष र सम छन् । यसले ति सच्चिदानन्दघन परमात्मामा नै स्थित अर्थात बसेका छन् ।

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेप्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ॥२०॥

भा.टी.- फेरि जो पुरुष प्रियलाई अर्थात जसको मनुष्यहरु प्रिय सम्झन्छन् । तिनलाई प्राप्त भएर हर्षित हुदैनन् । अनि अप्रियलाई अर्थात जसलाई मनुष्य अप्रिय मान्दछन् , तिनलाई प्राप्त भएर दु:खित नहुने र यस्तो स्थिर बुद्धि र संशयरहित ब्रह्मवेत्ता पुरुष सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मामा एकै भावले नित्य स्थित छन् ।

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥२१॥

भा.टी.- अरु बाहिरका विषयादिमा अर्थात सांसारिक भोगादिमा आसक्तिरहित अन्तःकरणवाला पुरुष अन्तःकरणमा जो भगवत ध्यानजनित आनन्द छ , त्यसलाई प्राप्त हुन्छ । अनि त्यो पुरुष सच्चिदानन्दघन परब्रह्म्म परमात्मारुपीयोगमा एकै भावले स्थित भएर अर्थात बसेर अक्षय (कहिले नाश नहुने) आनन्दको अनुभव गर्दछ ।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥२२॥

भा.टी.- अनि जो यि इन्द्रिय र विषयादिका संयोग देखि उत्पन्न हुनेवाला सबै भोग हुन् ति (यद्यपि विषयी पुरुषहरुलाई सुखरुप भास्तछन् तर पनि) निःसन्देह दुखको हेतु हुन् । फेरि आदि

अन्तवाला अर्थात् अनित्य हुन् , यस निमित्त हे अर्जुन ! बुद्धिमान विवेकी पुरुष उनमा रम्दैनन् ।

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥२३॥

भा.टी.- जो मनुष्य शरीरको नाश हुनु भन्दा पहिले नै काम र क्रोध देखि उत्पन्न भएका वेगलाई सहन गर्न समर्थ छन् अर्थात काम क्रोधादिलाई जसले हमेशाका लागि जितिसकेको छ भने त्यो मनुष्य यस लोकमा नै योगी हो , फेरी सुखी पनि हो ।

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥२४॥

भा.टी.-जो पुरुष निश्चय गरेर अन्तरात्मामा नै सुखवाला हो , फेरि आत्मैमा आरामवाला हो , अनि जो व्यक्ति आत्मामा नै ज्ञानवाला छ यस्तो यो सच्चिदानन्द परमात्माका साथ एकभाव भएको सांख्ययोगी शान्तब्रह्ममा प्राप्त हुन्छ ।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥२५॥

भा.टी.-अनि नाश भै गएको छ सम्पूर्ण पाप जति जसका , फेरि ज्ञानपूर्ण भएर निवृत्ति भै सकेको छ संशय जसका, अरु सम्पूर्ण भूत प्राणीहरुका हितमा छ भावना जसको , एकाग्र भएको छ

भगवानको ध्यानमा चित्त छ जसको यस्ता ब्रह्मवेत्ता पुरुष शान्त परब्रह्ममा प्राप्त हुन्छन् ।

कामक्रोधवियुक्तनां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् २६॥

भा.टी.- फेरि काम कोध देखि रहित जितेका चित्तवाला परब्रह्म परमात्मालाई साक्षात्कार गरेका ज्ञानीपुरुषहरुका लागि सबैतिरबाट शान्त परब्रह्म परमात्मा नै प्राप्त छ अर्थात यस्ता स्थिर पुरुषहरु सदा मुक्त हुन्छन् । कस्तै भएपनि संसारको बन्धनमा बाँधिदैनन् ।

स्पर्शान् कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥२७॥

भा.टी.- अरु हे अर्जुन ! बाहिरका विषय भोगादिलाई चिन्तन नगरेर बाहिरै त्यागेर फेरि आँखाका दृष्टिलाई भृकुटीका बिचमा स्थिर गरेर अर्थात नाकका छिद्रमा बाहिरभित्र गर्ने भएका प्राण र अपान वायुलाई सम गरेर ।

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥२८॥

भा.टी.- जितिसकेको छ इन्द्रिय मन जसका यस्तो यो मोक्ष परायण मुनि ईच्छा भय र कोधादेखि रंहित भएको छ त्यो सधैका लागि मुक्तै हो ।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥२९॥

भा.टी.- अनि फेरि हे अर्जुन ! मलाई यज्ञ र तपहरुको भोग भोग्नेवाला फेरि सम्पूर्ण लोकका ईश्वरका पनि ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूतप्राणीहरुका सुहृद् अर्थात स्वार्थरहित प्रेमी मित्र यस्तो तत्वदेखि जानेर शान्तिलाई प्राप्त गर्दछ । अनि फेरि सच्चिदानन्दघन परिपूर्ण शान्त ब्रह्मका सिवाय उसका दृष्टिमा अरु केहि पनि रहदैन , केवल वासुदेव नै वासुदेव मात्र सबैतिर रहन्छन् ।

ॐ तत्सदित्ति श्रीमदभागवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णअर्जुनसंवादे ज्ञानकर्म संन्यासयोगो नाम पञ्चमोऽध्याय: ॥५॥

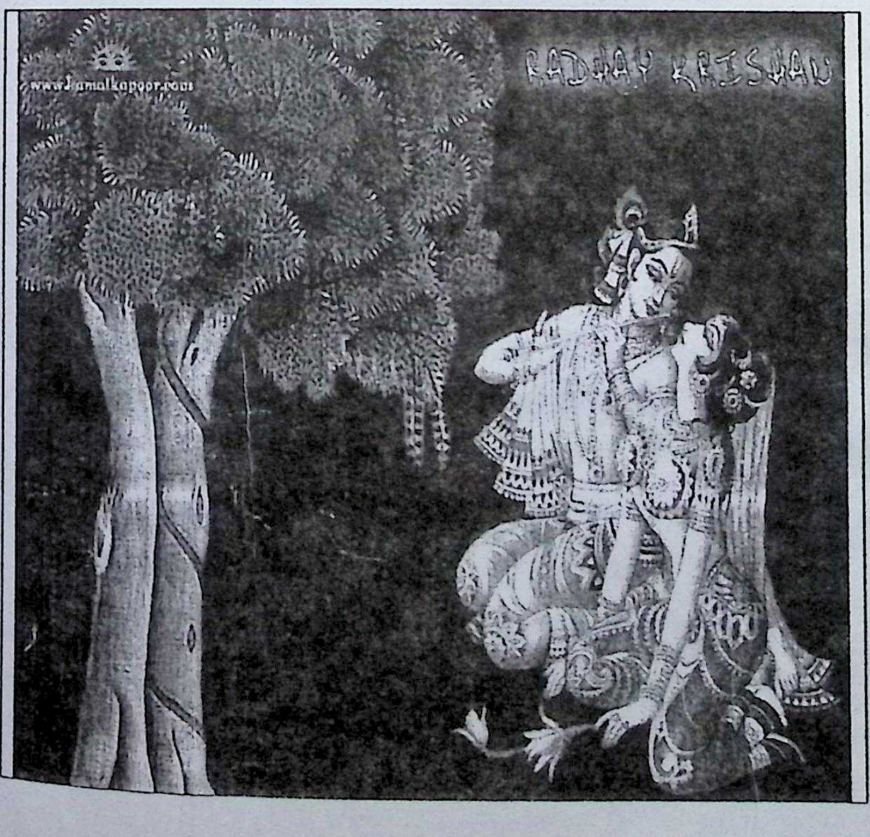

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भगवतगीता

षष्ठोऽध्यायः

भगवानुवाच

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
ससंन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रीयः ॥१॥

भा.टी.- त्यहाँ उप्रान्त भगवान श्रीकृष्ण आज्ञा गर्नु हुन्छ , हे अर्जुन ! जो पुरुष कर्मका फललाई नचाहेर पनि गर्नलाई योग्य भएको कर्म गर्दछ भने. त्यहि सन्यासी र योगी हो । अरु केवल अग्निलाई मात्र त्यागने भएका सन्यासी योगी होइनन् । फेरि केवल क्रियाहरुलाई त्यागने पनि सन्यासी योगी होइनन् ।

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
नह्यसंन्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन ॥२॥

भा.टी.- यस निमित्त हे अर्जुन ! जसलाई सन्यास जस्तो भनिन्छ उसैलाई तिमी योगी भन्ने जान , किनभने सङ्कल्पादिलाई नत्यागने वाला कोही कस्तै पुरुष पनि योगी हुन सक्दैन ।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्मकारणमुच्यते ।
योगारुढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥३॥

भा.टी.-अनि समत्वबुद्धिरुप योगमा आरुढ हुनाको इच्छा गर्नेवाला मननशील पुरुषका निमित्त योगका प्राप्तिमा निष्कामभावले कर्म गर्नु नै हेतु भनिएको छ । अरु फेरि योगारुढ भइसकेपछि त्यो योगारुढ पुरुषका लागि सर्व सङ्कल्पादिको अभाव नै कल्याणका हेतु भनिएको हो ।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसङ्कल्पसंन्यासी योगारुढस्तदोच्यते ॥४॥

भा.टी.-फेरि जसकालमा न त यिनीहरुका भोगादिमा आसक्तै हुन्छ, फेरि न कर्महरुमा नै आसक्त हुन्छन् । त्यस कालमा सर्वसङ्कल्पहरुको त्यागी पुरुष नै योगारुढ भनेर भनिन्छन् ।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥५॥

भा.टी.- अरु यो योगारुढता कल्याण हेतु भनिएको छ । यस निमित्त मनुष्यको यो कर्तव्य हो कि आफैंद्वारा आफ्नो संसाररुपी समुद्रदेखि उद्धार गर्नु र आफ्ना आत्मालाई अधोगतिमा नलानु , किनभने यो जीवात्मा आफैं आफ्नो मित्र हो र फेरी आफैं आफ्नो शत्रु पनि हो । अर्थात कोही दोस्रो शत्रु वा मित्र छैन ।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे बर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥६॥

भा.टी.- त्यस जीवात्माको त त्यो आफ्नै आत्मा नै मित्र हो , कारण जस जीवात्माद्धारा मन र इन्द्रियहरु सहितको शरीर जतेको

छ, अरु फेरि जसकाद्वारा मन र इन्द्रियहरु सहितको शरीर जितेको छैन त्यसको त्यो आफैं आफ शत्रुका सदृश तरह शत्रुमा बर्तन्छ ।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥७॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! जाडो गर्मी र सुखदुःखादिहरुमा अनि फेरि मान र अपमानमा जसका अन्तःकरणका वृतिहरु राम्रा प्रकारसँग शान्त छन् अर्थात विकारदेखि रहित भएका छन् भने यस्ता स्वाधीन आत्मावाला पुरुषका (ज्ञानमा) सच्चिदानन्दघन परमात्मा सम्यक् (राम्रा) प्रकारले स्थित भएका छन् अर्थात तिनका ज्ञानमा परमात्माका सिवाय अरु केही पनि छैन ।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥८॥

भा.टी.-अनि ज्ञान विज्ञानदेखि तृप्त छ अन्तःकरण जसको, तथा विकारदेखि रहित छ स्थिति जसको अरु राम्रा प्रकारसँग जितिएका छन् सम्पूर्ण इन्द्रियहरु जसको , फेरि समान छ माटो पत्थर अर्थात ढुंगो माटो सुवर्णहरु पनि जसको त्यो योगीयुक्त अर्थात भगवतप्राप्त भईसकेको हो भन्ने यस्तो भनिन्छ ।

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥९॥

भा.टी.- अरु जो पुरुष सुहृद् मित्र , वैरी , उदासिन ,मध्यस्थ द्वेषी र बन्धुगणहरुमा तथा धर्मात्माहरुमा र पापीहरुमा पनि समान भाववाला छ त्यो अत्यन्त श्रेष्ठ असल हो ।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥१०॥

भा.टी.-यस निमित्त यो उचित हो कि जसको मन इन्द्रियहरु सहितको शरीर जितिएको छ यस्तो वसनारहित र संग्रहरहित योगी एक्लै नै एकान्त स्थानमा स्थित भएर अर्थात बसेर निरन्तर आफूलाई परमेश्वरको ध्यानमा लगाओस् ।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥११॥

भा.टी.- कस्तो भने शुद्ध भूमि मा कुश मृगछाला र वस्त्र छ त्यसका उपरमा जसको यस्ता आफ्ना आसनलाई न अति उच्चो न अति होचो यस्तो स्थिर र समान आसन स्थापना गरेर ।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥१२॥

भा.टी.- अनि त्यस आसनमा बसेर मनलाई एकाग्र गरि चित्त र इन्द्रियहरुका कियालाई वशमा गरेर अन्तःकरण शुद्धिका लागि योगको अभ्यास गर्नु ।

समंकायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रंस्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥१३॥

भा.टी.- त्यसको विधि यस्तो प्रकारको छ कि काय शिर र ग्रीवालाई सीधा र अचल धारण गरी दृढ भएर आफ्ना नाकका अग भागमा हेरेर अरु दिशालाई नहेरिकन ।

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयस्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥१४॥

भा.टी.- ब्रह्मचर्यका व्रतमा रहीकन भयदेखि रहित र अत्यन्त राम्रा प्रकारले शान्त अन्तःकरणवाला अति सावधान भएर मनलाई वशमा गरी मैमा लागेको चित्तवाला र अनि मैमा परायण भएर स्थित हुनु अर्थात बस्नु ।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमांमत्संस्थामधिगच्छति ॥१५॥

भा.टी.- यस प्रकार आफूलाई निरन्तर परमेश्वरका स्वरुपमा लगाउने स्वाधीन मनवाला योगीजन मेरैमा स्थितरुप परमानन्द पराकाष्टावाला शान्तिमा प्राप्त हुन्छ ।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥१६॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! यो योग कस्तो छ भने न त अत्यन्त धेरै खानेलाई सिद्ध हुन्छ , न त बिल्कुलै नखानेलाई सिद्ध हुन्छ, फेरि

न अत्यन्त सुत्नेलाई नै सिद्ध हुन्छ , न फेरि अति जागा रहनेलाई सिद्ध हुन्छ अर्थात यी नियम विरुद्ध गर्नेलाई योगको सिद्धि कहिल्यै पनि हुँदैन ।

युक्तहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥१७॥

भा.टी.- दुःखादिको नाश गर्ने योग यथायोग्य आहार र विहार गर्ने तथा कर्मादिमा पनि यथायोग्य चेष्टा गर्ने र यथायोग्य शयनादि क्रिया गर्नेलाई नै सिद्ध हुन्छ ।

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥१८॥

भा.टी.- यस प्रकार योगको अभ्यासले अत्यन्त वशमा गरिएको चित्त जुन कालमा परमात्मा नै राम्रा प्रकारले स्थित हुन्छ , त्यस कालमा सम्पूर्ण कामनादेखि स्पृहारहित भएको पुरुष योगयुक्त यस्तै भनिन्छ ।

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥१९॥

भा.टी.- जस्ता प्रकारले वायु रहित स्थानमा राखेको दीयो चलायमान हुदैन त्यस्तै उपमा अनुसार परमात्माका ध्यानमा लागेको योगीले जितिएको चित्त भनिएको छ ।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥२०॥

भा.टी.- अनि हे अर्जुन ! जुन अवस्थामा योगका अभ्यासले निरुद्ध भएको चित्त उपराम हुन्छ , फेरि जुन अवस्थामा परमेश्वरका ध्यानदेखि शुद्ध भएका बुद्धिद्वारा परमात्मालाई साक्षात्कार गरेर सच्चिदानन्दघन परमात्मानै सन्तुष्ट हुन्छन् ।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥२१॥

भा.टी.- इन्द्रियहरुदेखि अतीत केवल शुद्ध भएका शूक्ष्म बुद्धिद्वारा ग्रहण गर्न योग्य जो अनन्त आनन्द छ, त्यसको जुन अवस्थामा अनुभव गर्दछ, फेरि जुन अवस्थामा स्थित भएको यो योगीलाई भागवत स्वरुपदेखि चलायमान हुँदैनन् ।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥२२॥

भा.टी.- फेरि परमेश्वर प्राप्तिरुप जुन लाभमा प्राप्त भएर त्यस देखि ठूलो दोस्रो केहि पनि लाभ मानिदैन, अरु भगवतप्राप्तिरुप जुन अवस्थामा स्थित भएका योगीलाई जस्तै बडो भारी दुःख परोस् तापनि तिनीहरु चलायमान हुँदैनन् ।

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥२३॥

भा.टी.- दु:खरुपी संसारका संयोग र वियोगदेखि रहित जसको नाम योग हो , त्यसलाई जान्नु पर्छ । त्यो योग नउकताएका चित्तले अर्थात् तत्पर भएका चित्तले निश्चय गर्नु कर्तव्य हो ।

सङ्कल्पप्रभवान् कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषत: ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्तत: ॥२४॥

भा.टी.- यस निमित्त मनुष्यको यो कर्तव्य हो कि सङ्कल्पदेखि उत्पन्न हुनेवाला सम्पूर्ण कामनाहरुका नि:शेषतादेखि अर्थात वासनामा र आसक्ति सहितलाई त्यागेर मनद्वारा इन्द्रियहरुका समूदायलाई सबैतिरबाट राम्रा प्रकारले वशमा गरेर ।

शनै: शनैरुपरमेद्बुद्धया धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मन: कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥२५॥

भा.टी.- कमपूर्वक अभ्यासले उपरामतामा प्राप्त हुनु , फेरि धैर्ययुक्त बुद्धिद्वारा मनलाई परमात्मामा स्थिर गरेर परमात्माका सिवाय अरु केहि पनि चिन्तन नगर्नु ।

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥२६॥

भा.टी.- तर जसको मन वशमा भएको छैन , तिनको यो कर्तव्य हो कि यो स्थिर नरहनेवाला र चञ्चल मन जुन कारणले सांसारिक पदार्थमा विचर्दछ ,अर्थात डुल्दछ त्यस देखि रोकेर

बारम्बार परमात्माकै तर्फमा लागेर निरोध गर्नु अर्थात स्थिर गराउनू ।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥२७॥

भा.टी.- किनभने जसको मन राम्रा तरह सँग शान्त छ , फेरि जो पापदेखि रहित छ , अरु जसको रजोगुण शान्त भईगएको छ , यस्तो सच्चिदानन्दघन परब्रह्मका साथ एकै भाव भएको योगीलाई अत्यन्त उत्तम आनन्द प्राप्त हुन्छ ।

यञ्जन्नेवं सदाऽत्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥२८॥

भा.टी.- अनि त्यो पापरहित योगी यस्ता प्रकारले निरन्तर आत्मालाई परमात्मामा लगाएर सुखपूर्वक परब्रह्म परमात्मा प्राप्तिरुपी अनन्त आनन्दको अनुभव गर्दछ ।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥२९॥

भा.टी.- सर्वव्यापी अनन्त चेतनामा एकैभावले स्थितरुप योगद्वारा युक्त भएको आत्मावाला र सबैमा समभावले हेर्ने भएको योगी आत्मालाई सम्पूर्ण भूतादिमा बरफ अर्थात हिउँमा पानीको सदृश व्यापक देख्दछ । अरु सम्पूर्ण भूतादिलाई आत्मैमा देख्दछ । अर्थात जस्तै स्वप्नबाट जागेको पुरुष स्वप्नको संसारलाई आफ्ना

अन्तर्गत संकल्पको आधार देख्दछन् । उस्तै त्यो पुरुष सम्पूर्ण भूतहरुलाई आफ्ना सर्वव्यापी अनन्त चेतन आत्माका अन्तर्गत संकल्पको आधार देख्दछ ।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥३०॥

भा.टी.- अरु जो पुरुष सम्पूर्ण भूतहरुमा सबैका आत्मास्वरुप म वासुदेवलाई नै व्यापक देख्दछन् , फेरि सम्पूर्ण भूतादिलाई म वासुदेवका अन्तर्गत देख्दछन् भने तिनका निमित्तमा म अदृश्य हुन्न , किनभने ति मःमा एकै भावले स्थित छन् ।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्नमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥३१॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारले जो पुरुष एकै भावमा स्थित भएर सम्पूर्ण भूतादिमा आत्मा रुपैले स्थित म सच्चिदानन्दघन वासुदेवलाई भज्दछन् , ति योगी सबै प्रकारले बर्ताव गरेर पनि मैमा ने बर्तन्छन् , किनभने तिनका अनुभवमा मेरा सिवाय अरु केहि छँदैछैन ।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥३२॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! जो योगी आफ्ना सदृश्यताले सम्पूर्ण भूतहरुमा सम देख्दछन् र सुख वा दुःखलाई पनि सबैमा समभावले देख्दछन् भने त्यो योगी अत्यन्त परम श्रेष्ठ मानिएको छ ।

अर्जुन उवाच

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहंनपश्यामिचञ्चलत्वात्स्थितिंस्थिराम् ॥३३॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारले भगवान श्रीकृष्णका वचन सुनेर अर्जुन विन्ती गर्नुहुन्छ , हे मधुसूदन ! यसलाई मैले मेरा मनका चञ्चलताले अर्थात चञ्चल हुनाले धेरैकाल बेला सम्म टिक्नेवाला स्थितीलाई देख्दिन ।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥३४॥

भा.टी.- किनकि हे कृष्ण ! यो मन बडो चञ्चल र बडो प्रमथन (मथन गरेर नसकिने) स्वभाववाला त बडो दृढ र अनि फेरि बलवान छ यस निमित्त त्यसलाई वशमा गर्नु म त वायुझैं अत्यन्त दुष्कर मान्दछु ।

श्रीभगवानुवाच

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वेराग्येण च गृह्यते ॥३५॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारसँग अर्जुनले सोधेपछि भगवान श्रीकृष्ण आज्ञा गर्नु हुन्छ कि हे महाबाहो ! निःसन्देह मन चञ्चल र अत्यन्त कठिनताले मात्रै वशमा हुनेवाला हो । तर हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! अभ्यास अर्थात स्थित गराउनका लागि बारम्बार प्रयत्न

गर्नाले र वैराग्य धारण गर्नाले वशमा हुन्छ । यसका निमित्त यो मनलाई अवश्य पनि वशमा गर्नु पर्छ ।

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥३६॥

भा.टी.- किनभने मनलाई वशमा नगर्नेवाला पुरुषद्वारा योग दुष्प्राप्य छ अर्थात प्राप्त हुन कठिन छ । फेरि स्वाधीन मनवाला प्रयत्नशील पुरुषद्वारा साधन गर्नाले प्राप्त हुन सहज छ भन्ने मेरो मत छ ।

<u>अर्जुन उवाच</u>

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिंकांगतिंकृष्ण गच्छति ॥३७॥

भा.टी.- यस्ता कुरा सुनेर फेरि अर्जुन विन्ति गर्नुहुन्छ हे कृष्ण ! योग देखि चलायमान भएको छ यस्तो यो मन जसको यस्ता शिथिल प्रयत्नवाला श्रद्धा युक्त पुरुष योगका सिद्धिमा अर्थात भगवान साक्षात्कारमा प्राप्त नभएर कुन गतिम प्राप्त हुन्छन् ।

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथिः ॥३८॥

भा.टी.- फेरि हे मधुसुदन ! के त्यो भगवतप्राप्तिका मार्गमा मोहित भएको आश्रयसहित पुरुष छिन्नभिन्न अर्थात फाटेका

बादल झैं दुबै तर्फदखि अर्थात भगवतप्राप्ति र सांसारिक भोगदिदेखि भ्रष्ट भएर नष्ट त हुदैन ।

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥३९॥

भा.टी.- हे कृष्ण ! मेरा यस संशयलाई सम्पूर्णताले छेदन गर्न अर्थात काट्नका लागि तपाईनै योग्य हुनुहुन्छ , किनभने तपाईदेखि सिवाय दोस्रो यो मेरो संशयको छेदन गर्नेवाला मिल्न सम्भव छैन अर्थात असम्भव छ ।

भगवनुवाच

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत् कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥४०॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारसँग अर्जुनले सोधेको प्रश्न सुनेर भगावन श्रीकृष्ण आज्ञा गर्नुहुन्छ कि हे पार्थ ! त्यस पुरुषको न त यस लोकमा न परलोकमा नै नाश हुन्छ , किनकि हे प्रिय अर्जुन ! कही पनि शुभ कर्म गर्नेवाला अर्थात भगवत अर्थ कर्म गर्ने कहिले पनि दुर्गतिमा प्राप्त हुदैनन् अर्थात त्यसले नर्क आदिको भोग भोग्नु पर्दैन ।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥४१॥

भा.टी.- परन्तु त्यो योग भ्रष्ट पुरुष पुण्यवानहरुका लोकको अर्थात स्वर्गादि उत्तम लोकमा प्राप्त भएर अर्थात गएर अर्थात त्यहाँ धेरै कालसम्म वास गर्छ र फेरि शुद्ध आचरण गर्नेवाला श्रेष्ठ पुरुषको घरमा जन्म ग्रहण गर्दछ ।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥४२॥

भा.टी.- वैराग्यवान पुरुष त्यो लोकमा गएर ज्ञानवान योगीहरुको कूलमा जन्म लिन्छन् , तर यस प्रकारको जो त्यो जन्म हो सो यो संसारमा निःसन्देह अत्यन्त दुर्लभ हो अर्थात यस्तो सबैले पाउँदैनन् ।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥४३॥

भा.टी.- अरु ति पुरुषहरु वहाँ त्यो पहिला शरीरमा साधन गरेका बुद्धिका संयोगको अर्थात समत्व बुद्धिरुप संसारको अनायासै प्राप्त हुन्छ , हे कुरुनन्दन ! त्यसका प्रभावले फेरि राम्रा प्रकारले भगवत प्राप्तिका निमित्त प्रयत्न गर्दछ ।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥४४॥

भा.टी.- फेरि त्यो विषयादिको वशमा भएर पनि उस पहिलेका अभ्यासले नै निःसन्देह भगवतप्राप्तिका तर्फमा आकर्षित गरिन्छ

अर्थात खिचिन्छ तथा समत्वबुद्धिरुप योगको जिज्ञासु पनि वेदमा भनिएका कर्महरुका फललाई उल्लङ्घन गरिदिन्छ ।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्विषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥४५॥

भा.टी.- अनेक जन्मको सिद्धि प्रयत्नपूर्वक अभ्यास गर्ने योगी पापदेखि रहित भएर परमपदमा प्राप्त हुन्छ ।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुनः ॥४६॥

भा.टी.- किनभने योगी तपस्वीहरु देखि श्रेष्ठ छन् , अरु शास्त्रका ज्ञानवालाहरु देखि पनि श्रेष्ठ मानिएका छन् , अनि फेरि अरु सकाम कर्म गर्नेवालाहरुदेखि पनि योगी नै श्रेष्ठ हुन् , यस निमित्त हे अर्जुन ! तिमी पनि योगी हौ ।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥४७॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! सम्पूर्ण योगीहरुमा पनि जो श्रद्धावान् योगी मेरैमा चित्त लगाएर अन्तरआत्माले मेरैमा भज्दछन् ती योगी परम श्रेष्ठ मान्य हुन् अर्थात म तिनीहरुलाई अत्यन्त मान्दछु ।

ॐ तत्सदित्ति श्रीमदभागवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णअर्जुनसंवादे आत्मासंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भगवतगती

सप्तमोऽध्यायः

भगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥१॥

भा.टी.- तहाँ उप्रान्त भगवान श्रीकृष्ण आज्ञा गर्नु हुन्छ कि हे पार्थ ! तीमी ममा अनन्यभावले प्रेमले आसक्त भएर फेरि अनन्य भावले ममा परायण अर्थात योगमा लागेर ममा भएका सम्पूर्ण विभूती बल ऐश्वर्यादि गुणले युक्त सबैको आत्मारुप जस्ता प्रकारले संशयरहित जान्नेछौ त्यो सुन ।

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेहभूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥२॥

भा.टी.- म तीम्रा निमित्तमा यस रहस्य सहित भएका तत्वज्ञानलाई सम्पूर्णताबाट भन्दछु , जसलाई जानेर यस संसारमा फेरि केहि पनि जान्न योग्य वस्तु शेष रहँदैन ।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥३॥

भा.टी.- तर हजारौं मनुष्यमा विरला कोही मनुष्य मात्र मेरा प्राप्तिका लागि प्रयत्न गर्दछन् । अरु फेरि ती प्रयत्न गर्ने योगी मध्यमा पनि कोही कोही पुरुष मात्र (ममा परायण भएका) मेरा तत्वलाई जान्दछन् अर्थात यथार्थ मर्मले जान्दछन् ।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतीरष्टाधा ॥४॥

भा.टी.- अनि फेरि हे अर्जुन ! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु र आकाश अरु मन, बुद्धि र अहंकार पनि यसै यी आठ प्रकारले विभक्त भएका मेरा वेग्लाबेग्लै प्रकृती छन् ।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतीं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥५॥

भा.टी.- यी आठ प्रकारका भेदवाला त अपरा हुन् अर्थात मेरा जड प्रकृती हुन् , अरु हे महाबाहो ! यस देखि दोस्रालाई मेरो जीवरुप परा अर्थात चेतन प्रकृती जान्नु , किनकि जसदेखि यो सम्पूर्ण जगत धारण गरिन्छ ।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥६॥

भा.टी.- अरु हे अर्जुन ! तीमी यस्तो सम्झ कि सम्पूर्ण भूत यी दुबै प्रकृती देखि नै उत्पत्ति भएका हुन् , फेरि मै जगतको

उत्पत्तिरुप र प्रलयरुप हूँ अर्थात सम्पूर्ण जगतको मूलकारण नै मै हूँ।

मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥७॥

भा.टी.-यस निमित्त हे धनञ्जय ! मदेखि सिवाय किंचित् मात्र पनि अर्थात अलिकती पनि दोस्रो वस्तु छैन , यो सम्पूर्ण जगत धागाको डोरामा मणि आदिका मालाहरु उने झैं मैमा सबै उनिएको छ ।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥८॥

भा.टी.-कसरी भने हे अर्जुन ! जलमा रस मै हूँ , फेरि चन्द्रमा र सूर्यमा प्रकाश शक्ति अर्थात प्रकाश गराउने मै हूँ , अरु सम्पूर्ण वेदहरुमा ॐकार पनि मै हूँ । आकाशमा शब्द र पुरुषहरुमा पुरुषत्व पनि मै हूँ , दोस्रो कोहि पनि छैन ।

पुण्यो गन्धःपृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥९॥

भा.टी.- फेरि पृथ्वीमा पवित्र गन्ध र अग्निमा तेज पनि मै हूँ । सम्पूर्ण भूतहरुमा जीवन मै हूँ अर्थात जसका आधारले ती बाँचेका छन् त्यो प्राण शक्ति पनि मै हूँ फेरि तपस्वीहरुको तप पनि मै हूँ ।

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥१०॥

भा.टी.- त्यस्तै हे अर्जुन ! तीमी सम्पूर्ण भूतहरुको सनातन कारण पनि मलाई नै जान , म बुद्धिमानहरुको बुद्धि र तेजस्वीहरुको तेज हूँ ।

बलं वलावतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥११॥

भा.टी.-अनि हे भरत श्रेष्ठ ! म बलमान्हरुको आसक्ति र कामनाहरु देखि रहित बल अर्थात सामर्थ्य हूँ । अरु सम्पूर्ण भूतहरुमा धर्मको अनुकूल अर्थात शास्त्रको अनुकूल काम पनि मै हूँ ।

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेती तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥१२॥

भा.टी.- त्यस्तै अरु पनि जो सत्वगुणदेखि उत्पन्न हुने भाव छन् , अरु जो रजोगुण र तमोगुणदेखि उत्पन्न हुने भाव छन् , ती सबैलाई तीमी म देखि नै हुने हुन् भन्ने यस्तो जान । तर वास्तवमा तीनमा म छु र ती ममा छैनन् ।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाती मामेभ्यः परमव्ययम् ॥१३

भा.टी.- परन्तु गुणहरुका कार्यरुप अर्थात सातीवक , राजस र तामस यी तीनै प्रकारका भावहरुदेखि यो सबै संसार मोहित भईरहेका छन् । यस निमित्त यी तीनै गुणहरुदेखि पर म अविनाशीलाई कती पनि जान्दैनन् ।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥१४॥

भा.टी.- किनभने यो अलौकिक अर्थात अत्यन्त अद्‌भूत त्रिगुणमयी मेरी योगमाया दुस्तर छे । परन्तु जो पुरुष मलाई नै निरन्तर भजन गर्दछ त्यो यस दुरुस्त अर्थात कसैले पनि जितेर जिती नसकिने भएको मायालाई उल्लङ्घन गरेर जान्छन् । अर्थात संसाररुपी महासागरदेखि तरेर पनि जान्छन् ।

न मां दुष्कृतीनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
मययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥१५॥

भा.टी.- यस्तो सुगम उपाय छ तापनि मायाद्वारा हरिएको ज्ञानवाला र आसुरी धारण गरेका फेरि मनुष्यहरुमा नीच र दूषित कर्म मूढ मेरो भजन गर्दैनन् ।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतीनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥१६॥

भा.टी.-भरतवंशीहरुमा श्रेष्ठ हे अर्जुन ! उत्तम कर्म गर्ने अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु र ज्ञानी अर्थात निष्कामी यस्ता चार प्रकारका भक्तजन मेरा भजन गर्दछन् ।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिविशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥१७॥

भा.टी.- तीनमा पनि नित्यप्रती ममा एकै भावले स्थिर भएर (बसेर) अनन्य प्रेम भक्तिवाला ज्ञानीभक्त अत्यन्त उत्तम हुन् , किनभने (मलाई तत्वदेखि जान्ने भएका) ज्ञानीजनको म अत्यन्त प्रिय छु , फेरि ती ज्ञानी मेरा अत्यन्तै प्रिय छन् ।

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वत्मैव मे मतम् ।
आस्थितः सहियुक्तात्मामामेवानुत्तमां गतीम् ॥१८॥

भा.टी.- यद्यपी यी सबै नै उदार छन् अर्थात श्रद्धा सहित मेरा भजनका निमित्तमा॰ समय लगाउने हुनाले उत्तम हुन् । परन्तु ती मध्ये ज्ञानी त साक्षात् मेरै स्वरुप हुन् भन्ने यस्तो मेरो मत छ , किनभने ती स्थिरबुद्धियुक्त ज्ञानीभक्त अती उत्तम गती स्वरुप मैमा अती असल प्रकारले छन् ।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिती स महात्मा सुदुर्लभः ॥१९॥

भा.टी.- धेरै जन्मका अन्तमा तत्वज्ञान प्राप्त भएका ज्ञानीजन वासुदेव नै हुन् भनेर मलाई भज्दछन् , यस्ता महात्मा अत्यन्त दुर्लभ हुन्छन् ।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥२०॥

भा.टी.- जो विषयासक्त पुरुष छन् ती त आफ्नै स्वभावले प्रेरित गरिएर त्यस भोगहरुको कामनाद्वारा ज्ञानले भ्रष्टभएका त्यस नियमलाई धारण गरेर अन्य अन्य देवताहरुको भजन गर्दछन् अर्थात पूज्दछन् ।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छती ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥२१॥

भा.टी.- जो जो सकामी भक्त जुन जुन देवताका स्वरुपलाई श्रद्धाले पूज्ने इन्छा गर्दछन् , त्यस त्यस भक्तको म उसै देवताका प्रती उसको श्रद्धा स्थिर गरिदिन्छु ।

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान्
॥२२॥

भा.टी.- अनि ती पुरुष त्यस श्रद्धाले युक्त भएर ती देवताहरुको पूजन गर्ने चेष्टा गर्दछन् , अरु फेरि ती देवतादेखि मद्वारा नै विधान गरेको त्यो इच्छित भोगादिको निःसन्देह प्राप्ति हुन्छ ।

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥२३॥

भा.टी.-तर ती अल्पबुद्धिहरुको त्यो फल नाशवान छ, देवताहरुको पूजन गर्ने देवताहरुमा प्राप्त हुन्छन् । अरु फेरि मेरा

भक्त चाहे जस्ता प्रकारले भजुन आत्मा ती ममा नै प्राप्त हुन्छन् ।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥२४॥

भा.टी.- यस्तो हुँदा पनि सबै मनुष्य मेरो भजन गर्दैनन् यसको कारण यो हो कि बुद्धिहीन पुरुष मेरो अनुत्तम अर्थात जसदेखि उत्तम अरु केहि पनि छैन , यस्ता अविनाशी परम भावना अर्थात अजन्मा अविनाशी भएर पनि आफ्ना भावले प्रकट हुन्छ, यस्तालाई तत्वदेखि नजानी मन इन्द्रियहरुदेखि पर म सच्चिदानन्दघन परमात्मालाई मनुष्य झै जन्मेर व्यक्ति भावमा प्राप्त भएको मान्दछन् ।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाती लोको मामजमव्ययम् ॥२५॥

भा.टी.-अनि आफ्नी योगमायादेखि छिपेको म सबैका प्रत्यक्ष अर्थात सामुन्ने हुन्न । यस निमित्त यी अज्ञानी मनुष्यहरु म जन्म देखि रहित अविनाशि परमात्मालाई तत्वदेखि विचार गरेर जान्दैनन् अर्थात मलाई जन्मने र मर्ने सम्झन्छन् ।

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥२६॥

भा.टी.-हे अर्जुन ! पहिले व्यतीत भएका अरु वर्तमानमा स्थित र अगाडि हुने सबै भूतहरु म राम्रा प्रकारले जान्दछु , परन्तु मलाई कोहि पनि श्रद्धा भक्ति रहित पुरुष जान्दैनन् ।

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥२७॥

भा.टी.- किनभने हे भरतवंशी अर्जुन ! संसारमा इच्छा र द्वेषदेखि उत्पन्न भएका सुख दुःखादि द्वन्दरुपी मोहले सम्पूर्ण प्राणीहरु अत्यन्तै अज्ञानतामा प्राप्त भईरहेका छन् ।

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥२८॥

भा.टी.- परन्तु निष्काम भावले श्रेष्ठ कर्महरुको आचरण गर्ने जुन पुरुषहरु र पाप नष्ट भएर गएको छ ती रागद्वेषादि द्वन्दरुपी मोहबाट मुक्त भएका फेरि अरु दृढ निश्चयवाला पुरुष मलाई सर्व प्रकारले भज्दछन् ।

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥२९॥

भा.टी.- अरु जो मेरा शरणमा आएर जन्म र मरण देखि छुट्नका लागि प्रयत्न गर्दैछन् ,ती पुरुष त्यस ब्रह्म अनि सम्पूर्ण अध्यात्म र सम्पूर्ण कर्मलाई जान्दछन् ।

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तिचेतसः ॥३०॥

भा.टी.- जो पुरुष अधिभूत र अधिदैवले सहित तथा अधियज्ञका सहित सबैको आत्मरुपी मलाई जान्दछन् , ती मुक्त चित्तवाला पुरुष अन्तकालमा (मरणका बेलामा) पनि मलाई नै जान्दछन् अथात मैमा प्राप्त हुन्छन् ।

ॐ तत्सदिति श्रीमदभागवद्गतीसूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णअर्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भगवतगती

अष्टमोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूत. च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥१॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारका भगवानका वचन सुनेर पनि नसम्झी अर्जुन विन्ति गर्दछन् कि हे पुरुषोत्तम ! जसको हजुरले वर्णन गर्नुभयो त्यो ब्रह्म के हो ? फेरि अध्यात्म के हो ? कर्म के हो ? अधिभूत कसलाई भनिएको हो ? अनि फेरि आधिदैव नामले कसलाई भनिएको हो ?

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥२॥

भा.टी.- हे मधुसुदन ! यो अधियज्ञ भनेको के हो ? अरु त्यो यस शरीरमा कसरी बसेको छ ? अनि फेरि युक्त चित्तवाला पुरुषहरुद्वारा अन्त समयमा हजुर कुन प्रकार बाट जानिनुहुन्छ ?

श्रीभगवानुवाच

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकारो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥३॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारले अर्जुनले प्रश्न गरेको सुनी भगवान श्रीकृष्ण आज्ञा गर्नुहुन्छ ! हे अर्जुन ! परम अक्षर जसको कहिले नाश हुँदैन यस्ता सच्चिदानन्दघन परमात्मा ब्रह्म हुन, अरु आफ्नो स्वरुप अर्थात जीवात्मा अध्यात्म नामले भनिन्छ , फेरि भूतहरुका भावलाई उत्पन्न गर्ने शास्त्रविहित यज्ञ, दान र होम आदिका निमित्त जो द्रव्यादिहरुको त्याग छ ,त्यो कर्मको नामले भनिएको छ ।

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहेभृतां वर ॥४॥

भा.टी.- उत्पती विनाश धर्मवाला पदार्थ अधिभूत हो , हिरण्यमय पुरुष आधिदैव हो । अरु फेरि देहधारी मध्यमा श्रेष्ठ भएका अर्जुन ! यसै शरीरमा म वासुदेव नै विष्णुका रुपले अधियज्ञ भएर बिराजमान भएको छु ।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाती स मद्भावं यती नास्त्यत्र संशयः ॥५॥

भा.टी.- फेरि जो पुरुष अन्तकालमा मर्नेबेला मलाई नै स्मरण गर्दा गर्दै यो शरीरलाई त्यागदछ , त्यो साक्षात् मेरै रुपमा प्राप्त हुन्छ , यसमा कती पनि सन्देह छैन ।

यं यं वाऽपि स्परन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैती कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥६॥

भा.टी.- कारण यस्तो छ कि हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! जो मनुष्य अन्तकालमा जुन जुन भावको चिन्तन गर्दै शरीरलाई त्यागदछ , त्यस त्यसमा नै प्राप्त हुन्छ , तर सदा उसै भावको चिन्तना गर्दै , किनभने सदासर्वदा जुन भाव को चिन्तन गर्दछ , अन्तकालमा पनि प्रायः उसै वस्तुको स्मरण हुन्छ । यसै कारणले पहिलेदेखि मेरो भजन गरे अन्तकालमा मेरै सम्झना रहन्छ , अरु वस्तुमा जाँदैन र त्यो मैमा प्राप्त हुन्छ ।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥७॥

भा.टी.- यस निमित्त हे अर्जुन ! तीमी सबै समयमा निरन्तर मेरो स्मरण गर , फेरि युद्ध पनि गर । यस्ता प्रकार मेरामा अर्पण गरिसकेका मन बुद्धिले युक्त भएर निःसन्देह मैमा नै प्राप्त हुन्छन् ।

अभ्यसयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याती पार्थानुचिन्तयन् ॥८॥

भा.टी.-फेरि हे पार्थ ! यो नियम छ कि परमेश्वरका ध्यानमा अभ्यासरुप योगले युक्त अरु तर्फ नजाने चित्तले निरन्तर चिन्तन गर्दै पुरुष परम प्रकाशरुप दिव्यपुरुषमा अर्थात परमेश्वरमा नै प्राप्त हुन्छ ।

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरुपमादित्यवर्ण तमसः
परस्तात्॥९॥

भा.टी.- यस कारणले जो पुरुष सर्वज्ञ अनादि, सबका नियन्ता सानु भन्दा पनि अती शूक्ष्म , सबैलाई धारण पोषण गर्ने , अचिन्त्य (चिन्तन गरेर नसकिने) स्वरुप , सूर्यका सदृश नित्य चेतन प्रकाशरुप अविद्यादेखि पनि अती पर शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्मालाई स्मरण गर्दछ ।

प्रायाणकाले मनसाऽचलेन
भक्तया युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैती दिव्यम् ॥१०॥

भा.टी.- त्यो भक्तियुक्त पुरुष अन्तकालमा पनि योगबलले भृकुटीका मध्यमा प्राणलाई राम्रा प्रकारले स्थापना गरेर फेरि निश्चल मनले स्मरण गर्दै उस दिव्यस्वरुप परम पुरुष परमात्मामानै प्राप्त हुन्छ ।

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वतीरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥११॥

भा.टी.-फेरि हे अर्जुन ! वेदलाई जान्ने विद्वान जुन सच्चिदानन्दघनस्वरुप परमपदलाई ॐकार नामले भन्छन् , फेरि

आसक्तिरहित प्रयत्नशील महात्माजन जसमा प्रवेश गर्दछन् , अनि जुन परमपदलाई चाहने ब्रह्मचर्यको आचरण गर्दछन् , त्यस परमपदलाई तीम्रा लागि म संक्षेपले भन्छु ।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥१२॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! सबै इन्द्रियका द्वारलाई रोकेर अर्थात इन्द्रियहरुलाई विषयदेखि हटाएर फेरि मनलाई हृदयमा स्थिर गरेर आफ्नो प्राणलाई मष्तकमा रोकेर , योगधारणामा स्थित भएको ।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाती त्यजन् देहं स याती परमां गतीम् ॥१३॥

भा.टी.- जो पुरुष ॐ यस एक अक्षररुप ब्रह्मको उच्चारण गर्दै (फेरि त्यसमा अर्थ स्वरुप) मेरो चिन्तन गर्दै शरीरलाई त्यागदछ भने त्यो पुरुष परम गतीमा प्राप्त हुन्छ ।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरती नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥१४॥

भा.टी.- हे पार्थ ! जो पुरुष ममा अनन्य चित्तले स्थित भएर निरन्तर मेरो स्मरण गर्दछ, त्यस निरन्तर मैमा युक्त भएका योगीका निमित्त म सुलभ छु , अर्थात सहजै प्राप्त हुन्छु ।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥१५॥

भा.टी.- अरु ती परम सिद्धिमा प्राप्त भएका महात्मा जुन मैमा प्राप्त भएर दुःखको स्थान रुपी क्षणभङ्गुर पुनर्जन्ममा प्राप्त हुँदैनन् , अर्थात तीनीहरुको पुनर्जन्म हुँदैन ।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तीनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥१६॥

भा.टी.- किनभने हे अर्जुन ! ब्रह्मलोकदेखि लिएर सबैलोक पुनरावर्ती स्वभाववाला छन् , तर हे कुन्तीपुत्र ! ममा प्राप्त भएर फेरि यसको पुनरावृत्ति अर्थात पुर्नजन्म हँदै्न किनभने म कामातती हूँ , अरु यी सबै ब्रह्मादिहरुका लोक कालका अवधिवाला हुनाले अनित्य छन् ।

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणे विदुः ।
रात्रि युगसहस्त्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥१७॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! ब्रह्माको जो एक दिन छ त्यसमा हजार चौकडी (सत्य , त्रेता, द्वापर ,कलि यी चार युगको एक चौकडी हुन्छ) युगतक अवधिवाला र रात्रीको पनि हजार चौकडी युगतक अवधिवाला जो पुरुष तत्वदेखि जान्दछन् ती योगीजन कालको तत्व जान्ने हुन् ।

अव्यक्ताद्व्यक्तय: सर्वा : प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥१८॥

भा.टी.- यस निमित्त ती यो पनि जान्दछन् कि सम्पूर्ण दृश्यमात्र भूतगण ब्रह्मका दिनको प्रवेशकालमा अव्यक्तदेखि अर्थात ब्रह्माको शूक्ष्म शरीरबाट उत्पन्न हुन्छन् । फेरि ब्रह्मका रात्रीका प्रवेशकालमा त्यस अव्यक्त नामक ब्रह्माका शूक्ष्म शरीर मै गएर लय हुन्छन् ।

भूतग्राम: स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवश: पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥१९॥

भा.टी.- त्यही यो भूत समूदायमा उत्पन्न भैकन , प्रकृतिका वशमा भएर रात्रीका प्रवेशकालमा लय हुन्छ, अनि दिनको प्रवेशकालसा फेरि उत्पन्न हुन्छ , हे अर्जुन ! यस प्रकार ब्रह्माको एक सय बर्ष पूर्ण भएपछि आफ्नो लोक सहित ब्रह्मा पनि शान्त हुन्छन् ।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातन: ।
य: स सर्वेषु भूतेयु नश्यत्सु न विनश्यती ॥२०॥

भा.टी.- तर त्यो अव्यक्त देखि पनि अति पर दोस्रा अर्थात विलक्षण जो सनातन अव्यक्त भाव छ । त्यो सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म परमात्मा सबै भूतहरु नष्ट भए पनि नंष्ट हुँदैन ।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतीम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥२१॥

भा.टी.- अरु जो त्यो अव्यक्त , अक्षर यस्तो भनिएको छ , त्यसै अक्षर नामक अव्यक्त भावलाई परम गति भनिन्छन्, अनि जुन सनातन अव्यक्त भावमा प्राप्त भएर मनुष्य फेरि पछि आउँदैनन् , त्यो मेरो परमधाम हो ।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥२२॥

भा.टी.- अरु हे पार्थ ! जुन परमात्माका अन्तर्गत सबै भूत छन् , फेरि जस सच्चिदानन्दघन परमात्मादेखि यो सबै जगत परिपूर्ण छ , त्यो सनातन अव्यक्त परम पुरुष अनन्य भक्तिले प्राप्त हुन योग्य छन् ।

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥२३॥

भा.टी.- अनि फेरि हे अर्जुन ! जुन कालमा शरीर त्याग गरेर गएका योगीजन फेरि पछि नआउनेवाला गतिमा र फेरि पछि आउनेवाला गतिमा पनि प्राप्त हुन्छन् । त्यस काललाई अर्थात मार्गलाई भन्छु ।

अग्निर्ज्योतीरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥२४॥

भा.टी.- ती दुई प्रकारका बाटोदेखि जुन मार्गमा ज्योतिर्मय अग्नि अभिमानी देवता छन् , अरु दिनका अभिमानी देवता छन् , शूक्लपक्षका अभिमानी देवता छन् , फेरि उत्तरायणका छ महिनाका अभिमानी देवता छन्, त्यस मार्गमा मरेर गएका ब्रह्मवेत्ता योगीजन (उपरोक्त देवताहरुद्वार क्रमैले लगिएका) ब्रह्ममा प्राप्त छन् ।

धुमोरात्रिस्तथाकृष्णःषण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसंज्योतीर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥२५॥

भा.टी.- अनि जुन मार्गमा धूमाभिमानी देवता छन् , अरु रात्री अभिमानी देवता छन् , दक्षिणायनका छ महिनाका अभिमानी देवता छन् , त्यस मार्गमा सकाम कर्मयोगीजन (उपरोक्त देवताद्वारा कमैले लिएर गएका) चन्द्रमाका ज्योतीमा प्राप्त भएर स्वर्गलोकका आफ्नो शुभाशुभ कर्महरुको फल भोगेर फेरि पछि आउँछन् ।

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥२६॥

भा.टी.- किनभने जगतको यो दुई प्रकारको शुक्ल र कृष्ण अर्थात देवयान र पितृयान मार्ग सनातन मानेको छ , यिनमा एकद्वारा गएका पछि आउनेवाला परमगतीमा प्राप्त हुन्छन् , फेरि दोस्राद्वारा गएका पछि आउछन् , अर्थात जन्म मृत्युमा प्राप्त हुन्छन् ।

नैते सृती पार्थ जानन् योगी मुह्यती कश्चन ।
तस्मात् सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥२७॥

भा.टी.- हे पार्थ ! (यस्ता प्रकारले) यी दुवै मार्गहरुमा तत्व सहितले जानेर कोही पनि योगीजन मोहित हुँदैनन् । यसकारण हे अर्जुन ! तिमी सबै कालमा समत्व बुद्धिरुपी योगले युक्त हौ, अर्थात निरन्तर मेरा प्राप्तिका लागि साधन गर्नेवाला हौ ।

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येती तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्तानमुपैती चाद्यम् ॥२८॥

भा.टी.- किनभने योगी पुरुष यस रहस्यलाई तत्वले जानेर , वेदादि पढ्न र फेरि यज्ञ, तप तथा दानादि गर्नमा जो पूण्यफल भनिएको छ , त्यो सबैको निःसन्देह उल्लङ्घन गरेर जान्छ । फेरि सनातन परमपदमा प्राप्त हुन्छ ।

ॐ तत्सदित्ति श्रीमदभागवद्गतीसूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णअर्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भगवतगीता

नवौं अध्यायः

भगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१॥

भा.टी.-त्यहाँ उप्रान्त श्रीकृष्ण आज्ञा गर्नुहुन्छ , हे अर्जुन ! तिमी दोषदृष्टीरहित भक्तका लागि यस परमगोपनीय ज्ञानलाई रहस्य सहित भन्छु कि जसलाई जानेर तिमी यो दुःखरुपी भावसागर देखि मुक्त हुनेछौ ।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥२॥

भा.टी.- यो ज्ञान सबै विद्याहरुको राजा तथा सबै गोपनीयको पनि राजा र अति पवित्र उत्तम प्रत्यक्ष फलवाला एवं धर्मसुक्त हो, साधन गर्नलाई बडो सुगम र अविनाशी हो ।

अश्रद्धानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥३॥

भा.टी.- अनि हे परंतप ! यो तत्वज्ञानरुपी धर्ममा श्रद्धारहित पुरुष ममा प्राप्त नभएर मृत्युरुपी संसारको चक्रमा भ्रमण गर्दछन् ।

मया ततमिदं सर्व जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्यवस्थितः ॥४॥

भा.टी.- अरु हे अर्जुन ! म सच्चिदानन्दघन परमात्मादेखि यो सबै जगत (पानी देखि हिऊँ जसरी पूर्ण हुनेछ) उस्तै परिपूर्ण छ । अरु सबै भूतहरु मेरै अन्तर्गत संकल्पका आधारमा स्थित छन् (यस निमित्त) वास्तवमा म तिनमा स्थित छैन ।

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥५॥

भा.टी.- अरु ति सबै भूत ममा स्थित छैनन् , परन्तु मेरी योगमायाको प्रभाव हेर , सम्पूर्ण भूतहरुलाई धारण, पोषण गर्ने र भूतहरुको उत्पत्ति गर्ने पनि मेरा आत्मा वास्तवमा भूतहरुमा स्थित छैन अर्थात बसेको छैन ।

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥६॥

भा.टी.- किनकि जस्तै (आकाशबाट उत्पन्न भएको) सर्वत्र विचर्ने महान वायु सधै आकाशमा स्थित छ , उस्तै मेरा संकल्पद्वारा उत्पत्ति हुनाले सम्पूर्ण भूत ममा स्थित छन् भन्ने यस्तो जान ।

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥७॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! कल्पका अन्तमा सबै भूत मेरो प्रकृतिमा प्राप्त हुन्छन्, अर्थात प्रकृतिमा लय हुन्छन् । फेरि कल्पका आदिमा तिनको म फेरि रचना गर्छु ।

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥८॥

भा.टी.- कसरी भने आफ्नो त्रिगुणमयी मायालाई अंगिकार गरेर स्वभावले परतन्त्र भएका यी सम्पूर्ण भूत समुदायलाई बारम्बार (तिनका कर्म अनुसार) रचना गर्छु ।

न च मां तानि कर्माणि निबध्नवन्ति धनञ्जय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥९॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! ति कर्ममा आसक्तिरहित र उदासिनका (समभाव) सदृश स्थित भएका म परमात्मालाई ति कर्मले कहिले पनि बाँध्दैनन् ।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥१०॥

भा.टी.- अनि हे अर्जुन ! मेरो अध्यक्षतामा यि मेरी माया चराचर सहित सर्वजगतको रचना गर्दछिन् । फेरि यस (माथि भनिएका) हेतुले नै यो संसार आवागमनरुपी चकमा घुम्दछ ।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥११॥

भा.टी.- यस्तो हुनाले पनि सम्पूर्ण भूतहरुमा महान ईश्वररुप मेरा परम भावलाई नजान्ने मूर्खहरु मनुष्यको शरीर धारण गर्ने म परमात्मालाई तुच्छ सम्झन्छ । अर्थात् आफ्नी योगमायाले संसारको उद्धार गर्नका लागि मनुष्यहरुमा विचरेको साधारण मनुष्यहरु ठान्दछन् ।

मोघाशा मोघमकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥१२॥

भा.टी.- जो कि व्यर्थ आशा , व्यर्थ कर्म र व्यर्थ ज्ञानवाला अज्ञानी जुन राक्षसहरु र असुरहरुका जस्तो मोहित गर्ने स्वभावलाई नै धारण गरेका छन् ।

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्मनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥१३॥

भा.टी.- तर हे कुन्तीपुत्र ! दैवी प्रकृतिमा आश्रित भएका जो महात्माजन छन् , ति त मलाई सबै भूतादिका सनातन कारण र नाशरहित अक्षर स्वरुप जानेर अनन्य मनले युक्त भई निरन्तर मेरो भजन गर्दछन् ।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥१४॥

भा.टी.- फेरि ति दृढ चित्तवाला भक्तजन निरन्तर मेरा नाम र गुणहरुको कीर्तन गरेर (मेरा प्राप्तिका निमित्त) प्रयत्न गर्दै फेरि मलाई बारम्बार प्रणाम गरी सदा मेरो ध्यानमा युक्त भएर अनन्यभक्तिले मेरो उपासना गर्दछन् ।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥१५॥

भा.टी.- तिनमा कोही त म विराट् स्वरुप परमात्मालाई ज्ञानद्वारा पूजन गरे एकत्व भावले अर्थात जे पनि छ सबै वासुदेवै मात्र हुन् , यस भावले उपासना गर्दछन् । फेरि दोस्रा पृथक् भावले अर्थात स्वामी सेवकका भावले र कोही कोही अनेक प्रकारले अपासना गर्दछन् ।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥१६॥

भा.टी.- किनभने कर्तु अर्थात श्रौतकर्म मै हूँ ,यज्ञ अर्थात पञ्च महायज्ञादिक स्मार्त कर्म मै हूँ , स्वधा अर्थात पितृहरुका निमित्त दिइने अन्न मै हूँ , औषधि अर्थात सबै वनस्पति पनि मै हूँ , फेरि मन्त्र मै हूँ, घिउ मै हूँ , अग्नि मै हूँ , अरु हवनरुपी किया पनि मै हुँ।

पितामहस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ॥१७॥

भा.टी.- अनि फेरि हे अर्जुन ! मै यो सम्पूर्ण जगतको धाता अर्थात धारण गर्ने र सम्पूर्ण कर्महरुको फल दिने अनि पिता माता र पितामह हूँ । अरु जान्नलाई योग्य पवित्र ॐकार र अरु ऋग्वेद , सामवेद र यजुर्वेद मै हूँ ।

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणां सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥१८॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! प्राप्त हुन योग्य र भरण पोषण गर्ने , सबैका स्वामी , शुभाशुभ देख्ने , सबैका वासस्थान र शरण लिन योग्य एवं प्रति उपकार नचाहेर हित गर्ने, अरु उत्पति प्रलयरुप सबैको आधार निधान र अरु अविनाशी कारण पनि मै हूँ ।

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥१९॥

भा.टी.- फेरि मै सूर्य रुप भएर तप्तछु , अरु बर्षा (पानी) लाई आकर्षण गर्दछु , फेरि बर्षाउँछु , अरु हे अर्जुन ! मै अमृत र सत्य एवं सत् र असत् पनि सबै मै हूँ ।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति
दिव्यान्दिवि देवभोगन् ॥२०॥

भा.टी.- तर जो तीनै वेदहरुले विधान गरिएका सकाम कर्म गर्ने र सोमरसलाई पिउने एवं पापदेखि पवित्र भएका पुरुष मलाई

यज्ञद्वारा पूजेर स्वर्ग प्राप्तिको चाहना गर्दछन् , ती पुरुष आफ्ना पूण्य फल रुप ईन्द्रलोकमा प्राप्त भएर स्वर्गमा दिव्य देवताहरुको भोग भोग्दछन् ।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते ॥२१॥

भा.टी.- अरु ति विशाल स्वर्गलोकको भोग गरेर पूण्य क्षीण भएपछि मृत्युलोकमा प्राप्त हुन्छन् । यसै प्रकार स्वर्गका साधनरुपी तीन वेदहरुमा भनिएका सकाम कर्मका शरण भएर भोगादिका कामनावाला पुरुष बारम्बार जान आउनमा प्राप्त हुन्छ । अर्थात पूण्यको प्रभावले स्वर्गलोकमा जान्छन् । अनि पूण्यको क्षीण भए पछि मृत्युलोकमा आउँछन् ।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥२२॥

भा.टी.- फेरि जो अनन्य भावले मैमा स्थित भएका भक्तजनहरु मै परमेश्वरलाई निरन्तर चिन्तन गरेर निष्काम भावले भजन गर्दछन् भने ति नित्य एकै भावले मैमा स्थित पुरुषहरुको योग क्षेम म स्वयं प्राप्त गरिदिन्छु ।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥२३॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! यद्यपि श्रद्धाले युक्त भएका जो सकामी भक्त दोस्रा देवताको पूजन गर्दछन् ति पनि , मेरै पूजन गर्दछन् (तर तिनको त्यो पूजन) अविधि पूर्वक मेरै हो , अर्थात अज्ञान युक्त पूजन गर्दछन् ।

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥२४॥

भा.टी.- किनभने सम्पूर्ण यज्ञहरुको भोक्ता र स्वामी मै हूँ , तर ति म अधियज्ञ स्वरुप परमेश्वरलाई तत्व देखि जान्दैनन् , यसैले गिर्दछन् अर्थात पुर्नजन्ममा प्राप्त हुन्छन् ।

यान्ति देवव्रता देवान् पितृन्यन्ति पितृव्रताः ।
भूतानियान्तिभूतेज्यायान्तिमद्याजिनोऽपि माम् ।२५॥

भा.टी.- कारण यो नियम छ कि देवताहरुलाई पूजन गर्नेवाला देवताहरुमा प्राप्त हुन्छन् , पितृहरुलाई पूजनेवाला पितृमै गएर मिल्छन् , भूतहरुलाई पूजनेवाला भूतमै गएर मिल्दछन् , अरु मेरा भक्तहरु मैमा मिल्दछन् । यस निमित्त मेरा भक्तहरुको पुनर्जन्म हुँदैन ।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥२६॥

भा.टी.- हे अजुन ! मेरो पूजन गर्नमा यो सुगमता पनि छ कि पत्र , पुष्प , फल , जल आदि जो कोही पनि भक्त मेरा लागि प्रेमले अर्पण गर्दछ , त्यो शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तिले प्रेम पूर्वक

अर्पण गरेका ति पत्र पुष्पादिक म सगुण स्वरुपले प्रकट भएर अत्यन्त प्रेम पूर्वक ग्रहण गर्दछु , अर्थात खान्छु ।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥२७॥

भा.टी.- यस निमित्त हे कुन्तीपुत्र ! तिमी जो कर्म गर्छौ, जो कुछ खान्छौ , जो कुछ हवन गर्छौ , जो कुछ दान दिन्छौ , जो कुछ स्वधर्माचरणरुप तपस्या गर्दछौ , त्यो सबै ममा अर्पण गर ।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥२८॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारले कर्महरुलाई ममा अर्पण गर्नुरुपी सन्यासयोगले युक्त भएका मनवाला तिमी शुभाशुभ फलरुपी कर्मबन्धन देखि मुक्त हुनेछौ , फेरि तिनदेखि मुक्त भएर मैमा प्राप्त होला ।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्
॥२९॥

भा.टी.- यद्यपि म सबै भूतहरुमा समभावले व्यापक छु , न कोही मेरा अप्रिय छ , न कोहि प्रियै छ , तर जो भक्त मेरो प्रेमले भजन गर्छ , त्यो ममा र म उसमा प्रत्यक्ष प्रकट भएर सदा सर्वदा सामुन्ने रहन्छु ।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥३०॥

भा.टी.- फेरि अरु पनि मेरा भक्तिको प्रभाव सुन , यदि कोहि अतिशय दुराचारीले पनि अनन्य भावले मेरा भक्त भएर निरन्तर मेरा भजन गर्दछ भने त्यो साधुनै मान्न योग्य हुन्छन् किनभने त्यो यथार्थ निश्चयवाला हो, अर्थात त्यसले राम्रा प्रकारसँग निश्चय गऱ्यो कि परमेश्वरको भजन समान अरुकेहि पनि छैन ।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥३१॥

भा.टी.- यस निमित्त त्यो शिघ्रै धर्मात्मा भै जान्छ । हे अर्जुन ! तिमी निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरो भक्त नष्ट हुँदैन ।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शुद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्
॥३२॥

भा.टी.- किनकि हे अर्जून ! स्त्री , वैश्य र शुद्रादिक तथा पापयोनीवाला पनि जो कोही हुन् मेरा शरणमा परेर परम गतिमा नै प्राप्त हुन्छन् ।

किं पुनब्रा्हृमणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं भजस्व माम् ॥३३॥

भा.टी.- फेरि भन्नै के रहयो र पूण्यशील ब्राह्मणहरु र फेरि राजर्षि भक्तजन परम गतिमा प्राप्त हुन्छन् । यस निमित्त तिमी सुखरहित र क्षणभङ्गुर यस मानव शरीरमा प्राप्त भएर निरन्तर मेरै भजन गर , अर्थात यो मनुष्य शरीर बडो दुर्लभ हो , तर नाशवान र सुखरहित छ , यस निमित्त कालको भरोसा न गरेर अर्थात अज्ञानले सुखरुप भासनेवाला विषय भोगमा नफसेर निरन्तर मेरै भजन गर ।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥३४॥

भा.टी.- केवल म सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मामै अनन्य प्रेमले नित्य निरन्तर अचल हौ , अनि म परमेश्वरको नै श्रद्धा प्रेम सहित निष्कामभावले नाम , गुण र प्रभावका श्रवण , कीर्तन , मनन , पठन , पाठनद्वारा निरन्तर भजन गर्ने हौ । फेरि मेरा (शंख , चक , गधा ,पद्य र किरीट कुण्डल आदि भुषणादिहरुले युक्त पिताम्बर वनमाला र कौस्तुभ मणिधारी विष्णुलाई) मन वाणी र शरीरद्वारा सर्वस्व अर्पण गरेर अतिशय श्रद्धा भक्ति प्रेमले पूजन गर्ने हौ , अनि सर्वशक्तिमान् विभूति , बल , ऐश्वर्य , मधुर्य , गम्भीरता, उदारता , वात्सल्य र सुहृदता आदि गुणहरुले सम्पन्न सबैको अश्रयरुपी वासुदेवलाई विनयभाव पूर्वक भक्तिसहित साष्टाङ्ग दण्डवत प्रणाम गर , यस प्रकार मेरा शरण भएका तिमीले आत्मालाई एकै भाव गरेर मैमा हुनेछौ ।

ॐ तत्सदिति श्रीमदभागवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णअर्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भगवतगीता

दशमोऽध्यायः

भगवनुवाच

भूय एव महाबाहो श्रृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥१॥

भा.टी.- भगवान श्रीकृष्ण आज्ञा गर्नु हुन्छ ,हे महाबाहो ! फेरि पनि मेरो परम रहस्य र प्रभाव युक्त वचन सुन , जसमा कि मेरो तिमी अतिशय प्रेम राख्नका लागि हितका इच्छाले भन्छु ।

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वश ॥२॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! मेरा उत्पत्तिको अर्थात विभूति सहितका लीलाले प्रकट भएको न त देवताहरु जान्दछन् फेरि न महर्षिहरुनै जान्दछन् । किनभने म सबै प्रकारबाट र देवताहरको र महर्षिहरुको पनि आदि कारण हूँ ।

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढःस मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३॥

भा.टी.- अनि मलाई जो अजन्मा अर्थात् वास्तवमा जन्मदेखि रहित र अनादि तथा लोकादिका महान् ईश्वर भन्ने तत्वज्ञानदेखि जान्दछन् , त्यो मनुष्यहरुमा ज्ञानवान पुरुष सम्पूर्ण पापहरुदेखि मुक्त भै जान्छ ।

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोह क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥४॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! निश्चय गर्नको शक्ति अनि तत्वज्ञान र अमूढता क्षमा सत्य फेरि इन्द्रियहरुलाई वशमा गर्नु , अनि मनको निग्रह तथा सुख दुःख उत्पत्ति र अनि प्रलय एवं भय र अभय आदिहरु पनि ।

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥५॥

भा.टी.- अनि अहिंसा, समता, सन्तोष, तप, दान, कीर्ति र अपकीर्ति यस्तै यो प्राणीहरुमा नाना प्रकारका भावहरु म देखिनै हुन्छन् ।

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाःप्रज्ञाः ॥६॥

भा.टी.- अरु फेरि हे अर्जुन ! सात जना महर्षि जन र अरु चार तिनको पनि पूर्वमा हुनेवाला सनकादि तथा स्वयं भूव आदि चौध मनु यति यी मेरा भाववाला मेरा संकल्पदेखि उत्पन्न भएका हुन , जसमा कि जसका संसारमा यी प्रजाहरु छन् ,

येतां विभूतिं योगं त मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥७॥

भा.टी.- अरु जो पुरुष यो मेरा परमैश्वर्य रुप विभूतिलाई योग शक्ति र तत्वदेखि जान्दछन् । त्यो पुरुष निश्चल ध्यान योग द्वारा ममा एकै भावले स्थित हुन्छ , यसमा कति पनि संशय छैन ।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्व प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥८॥

भा.टी.- म वासुदेव नै सम्पूर्ण जगतको उत्पतिको कारण हूँ , अरु म देखि सबै जगत् चेष्टा गर्दछन् । यस प्रकार तत्व सहितले सम्झेर श्रद्धा र भक्तिले युक्त भै बुद्धिमान् भक्तजन म परमेश्वरलाई नै निरन्तर भजन गर्दछन् ।

मच्चित्ता मद्‌गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥९॥

भा.टी.- अरु ती निरन्तर ममा मन लगाउने र ममा नै प्राण सहित अर्पण गर्ने भक्तजन सदा नै मेरा भक्तिका चर्चाद्वारा आपसमा मेरा प्रभावलाई बुझाउदै तथा मेरा गुण प्रभावको कथन गर्दा नै सन्तुष्ट हुन्छन् । फेरि म वासुदेवमा नै निरन्तर रमण गर्दछन् ।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥१०॥

भा.टी.- ति निरन्तर ममा ध्यान लगाउने र प्रीतिपूर्वक भजन गर्ने भक्तहरुलाई मै त्यो तत्वज्ञानरुपी योग दिन्छु , जसले ति मैमा प्राप्त हुन्छन् अर्थात मिल्दछन् ।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥११॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! तिनका उपर अनुग्रह गर्नका लागि नै म स्वयं तिनका अन्तःकरणमा एकै भावले स्थित भएर अज्ञानले उत्पन्न भएका अन्धकारलाई प्रकाशमय तत्वज्ञानरुप दीपकद्वारा नष्ट गरिदिन्छु ।

<u>अर्जुनवाच</u>

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥१२॥
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलोव्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥१३॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारका भगवानका वचन सुनेर अर्जुनजी विन्ती गर्नु हुन्छ कि हे भगवान ! तपाई परब्रह्म र परमधाम एवं परम पवित्र हुनुहुन्छ , किन भने तपाईलाई सब ऋषिजन सनातन दिव्य पुरुष र अनि देवताका पनि आदिदेव अजन्मा सर्वव्यपी भन्छन् , उस्तै नै फेरि देवऋषि नारद तथा असित र देवल ऋषि अनि महर्षि व्यास र स्वयं तपाई पनि मेरा सामुन्ने यो बात भन्नु हुन्छ ।

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥१४॥

भा.टी.- हे केशव ! जो कुछ पनि मेरा प्रति तपाई भन्नु हुन्छ यो सम्पूर्णलाई म सत्य मान्दछु । हे भगवान ! हजुरका लिलामय स्वरुपलाई न दानव जान्दछन् न देवतहरु नै जान्दछन् ।

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भुतभावन भुतेश देवदेव जगत्पते ॥१५॥

भा.टी.- हे भूतहरुलाई उत्पन्न गर्ने ! हे भूतहरुका ईश्वर ! हे देवताका पनि देव ! हे जगतका स्वमी ! हे पुरुषोत्तम ! तपाई स्वयं नै आफैं जान्नु हुन्छ ।

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥१६॥

भा.टी.- यस निमित्त हे भगवान ! तपाई नै ति आफ्ना दिव्य विभूतिहरुलाई सम्पूर्णताले भन्नलाई योग्य हुनुहुन्छ, कि जुन विभूतिहरुद्वारा यी सम्पूर्ण लोका लोकलाई व्याप्त गरेर स्थित हुनुहुन्छ ।

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥१७॥

भा.टी.- हे योगेश्वर ! म कुन प्रकारले निरन्तर चिन्तन गरेर हजुरलाई जानौं , अरु फेरि हे भगवान ! तपाई कुन कुन भावमा मद्वारा चिन्तन गर्न योग्य हुनुहुन्छ अर्थात हजुरलाई मैले कुन कुन भाव , वस्तुमा सम्झने ।

विस्तरेणात्मने योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि श्रृण्वतो नास्तिमेऽमृतम् ॥१८॥

भा.टी.- अनि हे जनार्दन ! आफ्नी योगशक्तिलाई र परमैश्वर्य विभूतिलाई फेरि पनि विस्तार पूर्वकले मेरा सामुन्ने भन्नु होस् । किनभने तपाईका अमृतरुपी वचन सुनेर पनि मेरो तृप्ति हुँदैन अर्थात सुन्नाको उत्कण्ठा अझै पनि बनिरहेको छ ।

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेण्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥१९॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारका अर्जुनका प्रश्न सुनेर श्रीकृष्ण भगवान आज्ञा गर्नु हुन्छ , हे कुरुश्रेष्ठ ! अब म तिम्रा लागि आफ्ना दिव्य विभूतिहरुलाई प्रधानताले भन्छु , किनभने मेरो विस्तारको अन्त छैन ।

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभुताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥२०॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! म सबै भूतहरुका हृदयमा स्थित सबैको आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतहरुको आदि , मध्य र अन्त पनि मै हूँ ।

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥२१॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! म अदितिका बाह्र पुत्रमा विष्णु अर्थात बामन अवतार र ज्योतिहरुमा किरणवाला सूर्य हूँ ।अनि फेरि म उन्नाचास वायुहरुमा मरीचि नाम गरेको वायु हूँ, नक्षत्रहरुमा नक्षत्रहरुको अधिपति चन्द्रमा पनि मै हूँ ।

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥२२॥

भा.टी.- अनि फेरि म वेदहरुमा साम वेद हूँ , देवताहरुमा इन्द्र हूँ , अरु इन्द्रियहरुमा मन हूँ , भूतप्राणीहरुका मध्यमा चेतना अर्थात ज्ञानशक्ति हूँ ।

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
बसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥२३॥

भा.टी.- फेरि म एकादश रुद्रहरुमा शंकर हूँ । अरु यक्ष र रक्षसहरुमा धनको स्वमी कुबेर हूँ , फेरि म अष्ट बसुहरुमा अग्नि हूँ , शिखरवाला पर्वतहरुमा म स्वर्णमय पर्वत हूँ ।

पुरोधसां च मुख्य मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥२४॥

भा.टी.- पुरोहितहरुमा मुख्य अर्थात देवताहरुको पुरोहित बृहस्पति भनेर मलाई जान । फेरि हे पार्थ ! म सेनापतिहरु मध्यमा स्कन्द (स्वमी कार्तिक) र जलाशयहरुमा म समुद्र पनि मै हूँ ।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥२५॥

भा.टी.- अनि हे अर्जुन ! म महर्षिहरुमा भृगु र वचनहरुमा एक अक्षर अर्थात ॐकार मै हूँ , सबै प्रकारका यज्ञहरुमा जपयज्ञ र स्थिर भएका स्थावर मध्यमा हिमालय पर्वत पनि मै हूँ ।

अशवत्थ सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गनधर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनि ॥२६॥

भा.टी.- सबै वृक्षहरुमा पीपलको वृक्ष र देवर्षिहरुमा नारद मुनि मै हूँ, गन्धर्वहरुमा चित्ररथ नाम गरेको गन्धर्व र सिद्धहरुमा कपिल मुनि भनेको मै हूँ ।

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥२७॥

भा.टी.- अरु फेरि हे अर्जुन ! तिमी यो पनि जान कि घोडाहरुमा अमृत देखि उत्पन्न हुने उच्चैःश्रवा नाम गरेको र हात्तीहरुमा

ऐरावत नाम गरेको हात्ती तथा मनुष्यहरुमा राजा भन्ने पनि मलाई नै जान ।

आयुधानामहं बज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥२८॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! मलाई शास्त्रहरुका मध्मा बज्र र गाईहरु मध्यमा कामधेनु नाम गरेको गाई जान , अरु (शास्त्रक्तरीतिले) सन्तान उत्पत्तिको हेतु कामदेव पनि मै हूँ । सर्पहरुमा सर्पराज वासुकी पनि मलाईनै जान ।

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥२९॥

भा.टी.- म नागहरुमा अनन्त (शेषनाग) र जलचरहरुमा (तिनको अधिपति) वरुण हूँ , अरु पितृहरुमा आर्यमा नाम गरेको र शासक अर्थात शासनगर्ने मा यमराज भन्ने पनि मलाई नै जान ।

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥३०॥

भा.टी.- अनि फेरी हे अर्जुन ! म दैत्यहरुमा प्रह्लाद र गन्ति गर्नेवालाहरुमा समय पनि मै हूँ तथा पशुहरुमा मृगराज (सिंह) र पंक्षिहरुका मध्यमा गरुड भन्ने पनि मलाई नै जान अर्थात मै हूँ।

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्त्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥३१॥

भा.टी.- फेरि म पवित्र गर्नेहरुमा वायु र शस्त्रधारीहरुमा राम हूँ, तथा मच्छाहरुका मध्यमा मगरमच्छ भन्ने पनि मै हूँ, अरु नदीहरुमा भागीरथी गङ्गा पनि मै हुँ ।

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥३२॥

भा.टी.-हे अर्जुन ! सृष्टिको आदि, अन्त र मध्य पनि मै हूँ, तथा म विद्याहरुका मध्यमा अध्यात्मविद्या अर्थात ब्रह्मविद्या र परस्परमा विवाद गर्नेहरुका मध्यमा तत्व निर्णयहरुका लागि गरिने वादविवाद पनि मै हूँ ।

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ॥३३॥

भा.टी.- अनि फेरि म अक्षरहरुमा अकार र समासहरुमा द्वन्द नाम गरेको समास हूँ । तथा अक्षयकाल अर्थात कालको पनि काल महाकाल र विराट स्वरुप अर्थात सबैलाई धारण पोषण गर्ने पनि मै हूँ ।

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥३४॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! म सबैलाई नाश गर्ने मृत्यु र अगाडि हुनेहरुका उत्पत्तिको कारण हूँ अनि श्रीहरुमा कीर्ति श्री वाक् स्मृति मेधा धृति र क्षमा पनि मै हूँ ।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥३५॥

भा.टी.- तथा म गायन गर्न योग्य श्रुतिहरुमा बृहत्साम र छन्दहरुका मध्यमा गायत्री छन्द हूँ । फेरि महिनाहरुमा मार्गशिर्ष नाम गरेको महिना र ऋतुहरुमा बीचमा बसन्त ऋतु पनि मलाई नै जान अर्थात मै हुँ ।

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्तेस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥३६॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! म छल गर्नेमा जुवा र प्रभावशाली पुरुषहरुमा प्रभाव पनि मै हूँ तथा म जेता अर्थात जीत्नेवालाहरुको विजय हूँ , अरु निश्चय गर्नेवालाहरुको निश्चय एवं सात्विकीय पुरुषहरुको सात्विक भाव पनि मैं हूँ ।

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥३७॥

भा.टी.- अरु फेरि वृष्णिवंशीहरुमा वासुदेव अर्थात स्वयं म तिम्रो साथी र पाण्डवहरुमा धनञ्जय अर्थात तिमी हूँ, मुनिहरुमा वेदव्यास र कविहरुमा शुकाचार्या कवि पनि स्वयं मैं हूँ ।

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥३८॥

भा.टी.- अरु दमन गर्नेहरुको दण्ड अर्थात दमन गर्ने शक्ति पनि मैं हूँ, जित्ने इच्छा गर्नेहरुको नीति हूँ, अरु गोपनीय भावहरुमा मौन (नबोल्नु)पनि मैं हूँ तथा ज्ञानवानहरुको तत्वज्ञान पनि मै हूँ।

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥३९॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! जो सबै भूतहरुमा उत्पत्तिको कारण छ त्यो पनि सबै मैं हूँ, किनभने यस्तो त्यो चर अचर (कोही पनि) भूत छैन कि जो म देखि रहित होस् यस निमित्त सबै मेरै स्वरुप हुन् ।

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥४०॥
भा.टी.- हे परमतप ! मेरा दिव्य विभूतिहरुको अन्त छैन । यो त मैले आफ्ना विभूतिहरुको विस्तार तिम्रा निमित्त एक देशले अर्थात संक्षेपले भनिदिए ।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम् ॥४१॥

भा.टी.- यस निमित्त हे अर्जुन ! जो जो पनि विभूति युक्त अर्थात ऐश्वर्य युक्त एवं कान्तियुक्त र शक्तियुक्त वस्तु छन् तिनलाई तिमी मेरै तेजका अशं देखि उत्पन्न भएका जान ।

अथवा वहुनैते न किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥४२॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! यसलाई धेरै जान्नाले तिम्रो के प्रायोजन सिद्ध हुन्छ, र म यो सम्पूर्ण जगतलाई आफ्नी योगमायाका एकै अंश मात्रले धारण गरेर स्थित भएको छु , यस निमित्त मलाई नै तत्वदेखि जान्नु असल छ ।

ॐ तत्सदित्ति श्रीमदभागवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णअर्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्याय: ॥१०॥

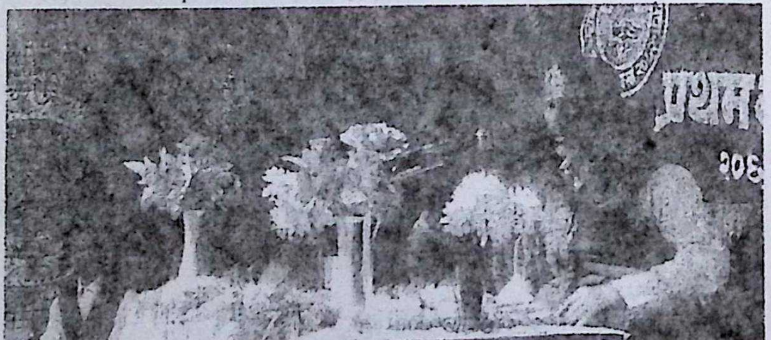

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भगवतगीता

एकादशोऽध्याय

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥१॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारका वचन सुनेर अर्जुन बिन्ति गर्दछन कि हे भगवान ! मेरा उपरमा अनुग्रह गर्नका निमित्त अत्यन्त परम गोपनीय अध्यात्म विषयका बचन अर्थात् उपदेश हजुरद्वारा जो कहियो त्यसले मेरो यो अज्ञान नष्ट भयो ।

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तारशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यपि चाव्ययम् ॥२॥

भा.टी.- किनभने हे कमलनेत्र ! मैले भूतहरुको उत्पत्ति र प्रलयको कथा हजुरदेखि विस्तार पूर्वक सुनिसकेको छु । फेरि हजुरको अविनाशी प्रभाव पनि सबै सुनिसकें ।

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेशवरं ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रुपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥३

भा.टी.- हे परमेश्वर ! हजुर आफुलाई जस्तो बताउनुहुन्छ , त्यो सबै ठिक यस्तै नै हो पुरुषोत्तम ! हजुरको ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति,

बल, वीर्य र तेज युक्त रुपलाई म प्रत्यक्ष देख्न चाहन्छु अर्थात् ईच्छा गर्दछु ।

मान्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥४॥

भा.टी.- यस निमित्त हे प्रभो ! मैले त्यो हजुरको रुप देख्नको निमित्त शक्य छ , यस्तो यदि मान्नु हुन्छ भने त हे योगेश्वर ! हजुरले मेरा उपर करुणा गरेर आफ्ना अविनाशी स्वरुपको मलाई दर्शन गराउनुहोस् ।

भगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रुपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥५॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारका अर्जुनले प्रार्थना गरेको सुनेर श्रीकृष्ण भगवान् आज्ञा गर्नहुन्छ कि हे पार्थ ! मेरा सैकडों तथा हजारौं नाना प्रकारका र नाना वर्णका आकृतिवाला अलौकिक रुपहरुलाई हेर ।

पश्यदित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥६॥

भा.टी.- अरु हे भरतवंशी अर्जुन ! ममा आदित्यहरु अर्थात् अदितिका द्वादश पुत्रहरुलाई र आठ वसुहरुलाई अनि दुबै अश्विनीकुमारहरु र उनान्चास मरुद्गणहरु अर्थात् वायुहरुलाई

हेर , फेरि अरु पनि धेरै नै पहिले नदेखेका आश्चर्यजनक रुपहरुलाई पनि हेर ।

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्नुमिच्छसि ॥७॥

भा.टी.- अरु हे अर्जुन ! अब यस मेरा शरीरमा एकै ठाऊँमा स्थित भएको चराचर सहित सम्पूर्ण जगत हेर । अरु पनि देख्नको ईच्छा गर्छौ सो पनि हेर सम्पूर्ण हेर ।

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥८॥

भा.टी.- तर मलाई मेरा विराटरुपलाई यो आफ्ना प्राकृत नेत्रहरुद्वारा निःसन्देह हेर्न समर्थ हुनेछैनौं । यस निमित्त म तिम्रा लागि दिव्य अर्थात् अलौकिक चक्षु (नेत्र) दिन्छु यसैले तिमी मेरो प्रभाव र योगशक्तिलाई हेर ।

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रुपमैश्वरम् ॥९॥

भा.टी.- तहाँ उप्रान्त महाराज धृतराष्ट्रका सामुन्ने सञ्जय भन्दछन्, राजन ! महायोगेश्वर सम्पूर्ण पापहरुलाई नाश गर्ने भगवान्‌ले यस्ता प्रकारले भनेर तहाँ उप्रान्त अर्जुनका निमित्तमा परम ऐश्वर्य युक्त दिव्य स्वरुपलाई देखाइ दिए ।

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भूतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥१०॥

भा.टी.-अरु त्यस अनेक प्रकारका मुख र नेत्रहरुले युक्त फेरि अनेक प्रकारका अदभूत दर्शनवाला एवं अनेक प्रकारका धैरै नै दिव्य विभूषणहरुले युक्त र अरु फेरि अनेक प्रकारका धेरै नै दिव्य शस्त्र अस्त्रादि हातमा उठाएर लिएका ।

दव्यमाल्यम्वरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥
सवोश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥११॥

भा.टी.- तहाँ उप्रान्त दिव्य माला र वस्त्रहरु धारण गरेका अरु दिव्य गन्ध (चन्दन) को लेपन गरेका एवं सबै प्रकारका आश्चर्यादिले युक्त भएका सिमारहित विराटस्वरुप परमदेव परहेश्वरलाई अर्जुनले देखे ।

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥१२॥

भा.टी.- फेरि हे राजन् ! आकाशमा हजारौं सूर्यको एकै साथ उदय हुँदा जो प्रकाश हुन्छ, त्यो पनि त्यस विश्वरुप परमात्माका सद्दश कदाचितै मात्र होला अर्थात् त्यस्तो प्रकाश केहिको पनि हुनेछैन ।

तत्रैकस्थ जगतकृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥१३॥

भा.टी.- यस्ता आश्चर्यमय रुपलाई देखि पाण्डुपुत्र अर्जुनले त्यस समयमा अनेक प्रकारले विभक्त भएको अर्थात् पृथक पृथक भएका सम्पूर्ण जगत्लाई त्यसै देवताहरुका पनि देवता भएका श्रीकृष्ण भगवानका शरीरमा एकै ठाउँमा स्थित भएका अर्थात बसेको देखे ।

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥१४॥

भा.टी.- तदनन्तर त्यस आश्चर्यले युक्त भएर हर्षित रोम भएका अर्जुनले विश्वरुप परमात्माको श्रद्धा भक्तिले युक्त भएर विन्ति गर्न लागे ।

अर्जुनउवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वास्तथा भूतविशेषसंघान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च
सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥१५॥

भा.टी.- हे देव ! हजुरका शरीरमा सम्पूर्ण देवताहरुलाई र अनि फेरि अनेक प्रकारका भूतहरुका समुदायहरुलाई अनि कमलका आसनमा विराजमान भएका ब्रह्माजीलाई तथा कैलाश पर्वतमा बसेका महादेवलाई र सम्पूर्ण ॠषिहरुलाई अनि दिव्य सर्पहरुलाई पनि देख्दैछु ।

अनेकाबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि
त्वां सर्वतोऽनन्तरुपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरुप ।१६॥

भा.टी.- हे सम्पूर्ण विश्वका स्वामी ! हजुरलाई अनेक प्रकारका हात, पेट, मुख र नेत्रहरुले युक्त तथा सबै तर्फबाट देख्छु फेरि न मध्य र न आदि नै देख्तछु अर्थात् हजुरको आदि, अन्त्य र मध्य केहि पनि देख्दिन ।

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता-
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥१७॥

भा.टी.- हे विष्णो ! हजुरलाई म मुकुट, गदा, र चकले युक्त तथा सर्व प्रकारबाट प्रकाशमान तेजको पुञ्ज, प्रज्वलित अग्नि, र सूर्यका सद्दश ज्योतियुक्त , हेर्नमा अत्यन्त गहन र अप्रमेय स्वरुप सबैतिरबाट देख्तछु ।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातास्त्वं पूरुषो मतो मे ॥१८॥

भा.टी.- यस निमित्त हे भगवान् ! तपाइँ नै जान्नलाई योग्य भएका परम अक्षर हुनुहुन्छ , अर्थात् परब्रह्म परमात्मा हुनुहुन्छ , फेरि तपाइँनै यस जगतका परम आश्रय हुनुहुन्छ तथा हजुर नै आदि धर्मको रक्षक हुनुहुन्छ फेरि हजुर नै अविनाशी सनातन पुरुष हुनुहुन्छ भन्ने यस्तो मेरो मत छ अर्थात म यस्तो निश्चय गर्दछु ।

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं
शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥१९॥

भा.टी.- हे परमेश्वर ! म हजुरलाई आदि अन्त्य र मध्यदेखि रहित फेरि अनन्त सामर्थ्यले युक्त अरु अनन्त हातहरु भएको अनि चन्द्र सूर्यरुपी नेत्रहरुले शोभित भएको र प्रज्वलित अग्निरुपी मुख भएको तथा आफ्ना तेजले यस जगतलाई तपायमान गरेको देख्दछु ।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रुपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥२०॥

भा.टी.- हे महात्मा ! यो स्वर्ग र पृथ्वीको बिचको सम्पूर्ण आकाश र अनि सबै दिशाहरु एकै हजुरबाट नै परिपूर्ण छ, तथा हजुरका

यस अलौकिक र भयंकर रुपलाई देखेर तीनै लोक अत्यन्त व्यथित भै रहेको छ ।

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥२१॥

भा.टी.- अरु हे गोविन्द ! यी सबै देवताहरुका समूह तपाईमा नै प्रवेश गर्दैछन् अरु धेरै भयभीत भएर हात जोडी हजुरका नाम र गुणको उच्चारण गर्दछन् , फेरि महर्षि र सिद्धहरुको समूदाय कल्याण होस् भन्ने यस्तो कहेर अत्यन्त उत्तमोत्तम स्तोत्रहरुद्वारा हजुरको स्तुति गर्दछन् ।

रुद्रादित्य वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥२२॥

भा.टी.- हे परमेश्वर ! जो एकादशरुद्र र द्वादश आदित्य अर्थात् बाह्र सूर्य तथा आठ वसु र साध्यगण विश्वदेव तथा अश्विनीकुमार अरु मरुद्गण र पितृहरुका समूदाय तथा गन्धर्व, यक्ष, राक्षस र सिद्धगणहरुको समूदाय छन् ति सबै जना विस्मित भएर हजुरलाई हेर्दैछन् ।

रुपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं
महावाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥२३॥

भा.टी.- अरु फेरि हे महाबाहो ! हजुरका धेरै मुख र नेत्रहरु भएका अनि धेरै हात जंघा र पाउ भएको अरु धेरै पेट भएको तथा धेरै नै विकराल दुई दाह्रा भएको महान रुपलाई देखेर सबै आकुल व्याकुल भैरहेका छन् , त्यस्तै म पनि अत्यन्त व्याकुल भै रहेको छु ।

नभः स्पृशं दीप्तमनेकवर्ण
व्यात्तानन दीप्तविशालनेत्रम ॥
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं विष्णो ॥२४॥

भा.टी.- किनभने हे विष्णो ! आकाशलाई स्पर्श गर्ने देदीप्यमान अनेक रुपहरुले युक्त, फैलाएर मुख र अनि प्रकाशमान विशाल नेत्रहरुले युक्त भएका हजुरलाई देखेर भयभीत अन्तःकरण भएकोमा धीरज र शान्तिमा प्राप्त हुन सक्दिन ।

दंष्ट्रकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥२५॥

भा.टी.- हे भगवान ! हजुरका विकराल दाह्रा र प्रलयकालका अग्निका समान प्रज्वलित मुखहरुलाई देखेर दिशाहरु पनि जान्दिन अनि सुखमा पनि प्राप्त भएको छैन । यस निमित्त हे देवेश ! हे जगन्निवास ! हजुर प्रसन्न हुनुहोस् ।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ।
भष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥२६॥

भा.टी.- अरु पनि म देख्दैछु कि ति सबै धृतराष्ट्रका पुत्र, राजाहरुका समूदाय सहित हजुरमा नै प्रवेश गर्दैछन् अरु भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य तथा त्यो कर्ण र हाम्रा पक्षमा पनि प्रधान योद्धाहरु सहित सबका सब ।

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चुर्णितैरुक्त्माङ्गैः ॥२७॥

भा.टी.- वेग युक्त भएका हजुरका विकराल दाह्रायुक्त भयानक मुखमा प्रवेश गर्दैछन् । फेरि धेरै धुलो भएका शिरका सहित हजुरका दाँतहरुका वीचमा परेका अर्थात् दाह्राले थिचिएका देखिन्छन् ।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥२८॥

भा.टी.- हे विश्वमुर्ते ! जस्तै नदीहरुका धेरै जलका प्रवाह समुद्रकै सम्मुख दौडन्छन् अर्थात् समुद्रमै गएर प्रवेश गर्दछन् , उस्तै ति शूरवीर मनष्यहरुका समूदाय पनि हजुरका प्रज्वलित भएका मुखहरुमा प्रवेश गर्दैछन् ।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगाः
विशन्ति चाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि
वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥२९।

भा.टी.- अथवा जस्तै पतंग(भुसुनाहरु) मोहका बसमा भएर नष्ट हुनका लागि प्रज्ज्वलित अग्नि (बत्ति) मा अत्यन्त बेगले प्रवेश गर्दछन् उस्तै नै यी सबैलोक पनि आफ्ना आशका लागि हजुरका मुखमा अत्यन्त वेगले प्रवेश गर्दैछन् ।

लेलिह्यसे ग्रसमानः
समन्ताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णे ॥३०॥

भा.टी.- फेरि हजुर ति सम्पूर्ण लोकहरुलाई प्रज्ज्वलित मुखहरुद्वारा ग्रास गरेर सबै तर्फबाट चाटिरहनुभएको छ । हे विष्णो ! हजुर उग्र प्रकाशले सम्पूर्ण जगतलाई तेजद्वारा परिपूर्ण गरेर तपायमान गर्नुहुन्छ ।

आख्याहि मे को भवानुग्ररुपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥३१॥

भा.टी.- हे भगवान् ! कृपा गरेर मेरा प्रति भन्नुहोस कि हजुर उग्ररुप वाला हुनुहुन्छ , हे देवतामा श्रेष्ठ ! हजुरलाई नमस्कार छ , प्रसन्न हुनुहोस , अदित्यस्वरुप हजुरलाई म तत्वदेखि जान्न चाहन्छु अर्थात् हजुरलाई तत्व सहित म जान्नको ईच्छा गर्दछु किनभने हजुरको प्रकृतिलाई म जान्न सक्दिन ।

श्रीभगवानुवाच

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥३२॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारका अर्जुनका विन्ति सुनेर भगवान आज्ञा गर्नुहुन्छ कि हे अर्जुन ! म लोकहरुलाई नाश गर्न बढेको महाकाल हुँ , यस समयमा यो लोक नष्टगर्नका लागि प्रवृत्त भएको छु, यस

निमित्त जो प्रतिपक्षीहरुका सेनामा स्थित भएका योद्धाहरु छन् ति सबैविना पनि रहँदैनन् अर्थात् तिमीले युद्ध नगरे पनि यी सबैको नाश हुनेछ।

तस्मात्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रुन् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहितः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥३३॥

भा.टी.- यस निमित्त तिमी उठ , खडा हौं , यश प्राप्त गर, शत्रुहरुलाई जितेर धनधान्यले सम्पन्न भएका राज्यको भोग गर । यी सबै शुरवीर पहिल्यै मद्वारा मारिएका छन् । हे सव्यसाचिन ! तिमी त केवल निमित्त मात्रै हौ ।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्ण तथान्यानपि योधवीरान् ॥
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व
जेतासि रणे सपत्नान् ॥३४॥

भा.टी.- फेरि यी द्रोणाचार्य र भीष्मपितामह तथा जयद्रथ , कर्ण र अरु अरु पनि धेरै मद्वारा मारिएका शूरवीर योद्धाहरुलाई तिमी मार , भय नगर, निःसन्देह तिमी युद्धमा बैरीहरुलाइृ जित्नेछौ यस निमित्त, युद्ध गर ।

सञ्जय उवाच:

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥३५॥

भा.टी.- तहाँ उप्रान्त संजय भन्दछन् कि हे राजन् ! केशव भगवानका यस्ता वचन सुनेर मुकुटधारी अर्जुन हात जोडेर काम्दै नमस्कार गरेर फेरि पनि भयभीत भएर प्रणाम गरि भगवान श्रीकृष्णका सामुन्ने गद्गद् वाणीले बोले ।

अर्जुन उवाच:

स्थाने हृषिकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
राक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥३६॥

भा.टी.- हे अन्तर्यामी ! यो योग्य नै हो कि जो हजुरका नाम र प्रभावका कीर्तनले जगत अत्ति हर्षित हुन्छन् अरु अनुरागमा पनि प्राप्त हुन्छन् । फेरि भयभीत भएका राक्षसहरु पनि दिशाहरुमा भाग्दछन् अरु सबै सिद्धगणहरुका समूदाय नमस्कार गर्दछन् , अर्थात् स्तुति भक्ति आदि गर्दछन् ।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।

अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥३७॥

भा.टी.- हे महात्मन् ! ब्रह्माका पनि आदिकर्ता सबैभन्दा ठूला हजुरका लागि ति कसरी नमस्कार गर्दैनन्, किनभने हे अनन्त ! हे देवेश ! हे जगन्निवास ! जो सत् असत् र तिनीहरुदेखि पर अक्षर अर्थात् सच्चिदानन्दघन ब्रह्म छ त्यो हजुरनै हुनुहुन्छ ।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य
विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरुप ॥३८॥

भा.टी.- हे प्रभो ! हजुर आदिदेव र सनातन पुरुष हुनुहुन्छ , हजुरै यस जगतको परम आश्रय र जान्नेवाला फेरि जान्नयोग्य अरु परमधाम हुनुहुन्छ , हे अनन्तरुप ! हजुरैदेखि यो सम्पुर्ण जगत व्याप्त छ अर्थात परिपूर्ण छ ।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥३९॥

भा.टी.- हे हरि ! हजुर वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा तथा प्रजाका स्वामी ब्रह्मा र ब्रह्माका पनि पिता हुनुहुन्छ । यस निमित्त हजुरलाई हजारौं बार नमस्कार छ, हजुरलाई फेरि पनि बारम्बार नमस्कारै नमस्कार छ ।

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥४०॥

भा.टी.- हे अनन्त सामर्थ्यवाला ! हजुरलाई अगाडि र पछाडिदेखि पनि नमस्कार छ, हे सर्वात्मन् ! हजुरलाई सबैतिरबाट नमस्कार छ किनभने अनन्त पराक्रमशाली तपाईंले सबै संसारलाई व्याप्त गरेको छ यस निमित्त हजुरै सर्वस्वरुप हनुहुन्छ ।

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥४१॥

भा.टी.- हे परमेश्वर ! सखा (साथी) यस्तो मानेर तपाईका यस प्रभावलाई नजानी मद्वारा प्रेमले अथवा प्रमादपनाले (पागलपनले) पनि हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखे ! यस्ता प्रकारले जो हठपूर्वक भनियो ।

यच्चावहासार्थमसत्कृताऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।

एकाऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥४२॥

भा.टी.- हे अच्युत जो तपाई हँसीका निमित्त विहार (खेलवाड) शैया(विस्तरा) आसन र भोजनादिहरुमा एक्लै अथवा ति सखा (साथी) हरुका सामुन्ने पनि अपमानित गरिनुहुन्छ त्यो सम्पूर्ण अपराध अप्रमेय रुष अर्थात् अचिन्त्य प्रभाववाला हजुरसँग म क्षमा याचना गर्दछु अर्थात् क्षमा माग्दछु ।

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुताऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥४३॥

भा.टी.- हे विश्वेश्वर ! हजुरनै यो चराचर जगतका र गुरुका पनि बडा गुरु एवं अत्यन्त पुजनीय हुनुहुन्छ । हे अतिशय प्रभावशाली ! तीनै लोकमा हजुरका समान दोस्रो काही पनि छैन, फेरि यसदेखि बढ्ता कसरी हुन सक्छ ।

तस्मातत्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीडचम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥४४॥

भा.टी.- त्यसकारण हे प्रभो ! म यो शरीरलाई राम्रा प्रकारले हजुरका चरणमा राखेर अनि प्रणाम गरेर स्तुति गर्न योग्य

हजुरलाई प्रसन्न गर्नका निमित्त प्रथाना गर्दछु, हे देव ! जस्तै पिता पुत्रलाई र सखा जस्तै साथीलाई अनि जस्तै पति प्रिय स्त्रीका अपराधलाई क्षमा गर्ने हुन्छन् , उस्तै हजुर पनि मेरा अपराधलाई सहन गर्नको निमित्त योग्य हुनुहुन्छ ।

अदृष्टपूर्व हृषिताऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रुपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥४५॥

भा.टी.- हे विश्वमुर्ते ! मैले पहिले नदेखेको आश्चर्यमय हजुरको यस रुपलाइृ देखेर हर्षित भैरहेको छु । अरु मेरो हृदय भय (डर) ले अत्यन्त व्याकुल पनि भै रहेको छ । यस निमित्त हे देव ! हजुरले यो आफ्नो चतुर्भुजी रुपलाई नै मेरा निमित्त देखाईदिनुहोस, हे देवेश ! हे जगन्निवास ! प्रसन्न हुनुहोस् ।

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि
त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रुपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमुर्ते ॥४६॥

भा.टी.- अनि फेरि हे विष्णो ! म उस्तैनै हजुरको मुकुट धारण गरेको तथा गदा र चक्र हातमा लिएको रुप हेर्नाको इच्छा गर्दछु । यस निमित्त हे विश्वरुप ! हे सहस्रबाहो ! हजुर उसै चतुर्भुजरुपले युक्त हुनुहोस् ।

श्रीभगवानुवाच

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रुपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥४७॥

भा.टी.- यस्ता प्रकार अर्जुनका प्रश्न सुनेर श्रीकृष्ण भगवान आज्ञा गर्नुहुन्छ कि हे अर्जुन ! प्रसन्नतापूर्वक मैले आफ्ना योगशक्तिका प्रभावले यो मेरो परम तेजोमय सबैको आदि र सीमारहित विराट् स्वरुप तिमीलाई देखाईदिएँ जो कि तिम्रा सिवाय दोस्रालाई पहिले देखाएको थिईन ।

न वेदयाज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न
च कियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवंरुपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥४८॥

भा.टी.- हे कुरुवीर अर्जुन ! मनुष्यलोकमा यस्ता प्रकारले विश्वरुपवाला मलाई न वेद र यज्ञादिका अध्ययनले तथा न त दान गर्नाले न कियाहरुले फेरि न उग्र अर्थात अत्यन्त कठिन तपस्याले नै तिम्रा सिवाय दोस्राले देखिन शक्य छु अर्थात् यो मेरो विराटस्वरुप तिम्रा सिवाय अरुलाई देखाउन सक्दिन अर्थात देखाउँदिन ।

मा ते व्यथा मा त विमूढभावो
दृष्ट्वा रुप घोरमीदृङ्ममेदम् ।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रुपमिदं प्रपश्य ॥४९॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारले मेरा यस विकराल रुपलाई देखेर तिमीलाई व्याकुलता नहोस, अरु मूढभाव (मूर्खपना) पनि न भै फेरि भयरहित प्रीतियुक्त मनवाला तिमी त्यसै मेरा यस (शंख, चक्र, गदा, पद्म सहितको) चतुर्भुजरुपलाई फेरि हेर ।

सञ्जय उवाच

इन्त्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रुपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भुत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥५०॥

भा.टी.- तहाँ उप्रान्त सञ्जय भन्दछन् कि हे महाराज ! वासुदेव भगवानले अर्जुनका प्रति यस्ता प्रकारले कहेर फेरि उस्तै आफ्नो चतुर्भुज रुप देखाइदिए फेरि महात्मा कृष्णले सौम्यमूर्ति भएका अर्जुनलाई धीरज दिदा भए ।

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रुपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिंगतः ॥५१॥

भा.टी.- तहाँ उप्रान्त अर्जुन विन्ती गर्दछन् कि हे जनार्दन ! हजुरका यस अत्यन्त शान्तिमय मनुष्यरुपलाई देखेर अब म शान्तचित्त भएर आफ्ना स्वभावमा प्राप्त भएँ अर्थात् पहिले जस्तो थिएँ अब उस्तै भएँ ।

श्रीभगवानुवाच

सदुर्दर्शमिदं रुपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रुपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ॥५२॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारका अर्जुनका प्रश्न सुनेर श्रीकृष्ण भगवान आज्ञा गर्नु हुन्छ हे अर्जुन ! मेरो यो चतुर्भुजरुप देख्न अत्यन्त दुर्लभ छ जसलाई तिमीले देख्यौ, किनभने देवता पनि सदा यस रुपको दर्शन गर्ने ईच्छा गर्दछन् ।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥५३॥

भा.टी.- अनि हे अर्जुन ! न वेदहरुदेखि न तपस्याले न दानले र न यज्ञहरु गर्नाले नै यस प्रकार चतुर्भुजरुप म देखिन सक्छु , जस्तो मेरो रुप तिमीले देखेका छौ ।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥५४॥

भा.टी.- तर हे श्रेष्ठ ! तपस्यावाला अर्जुन ! अनन्य भक्ति गरेर यस्ता प्रकारको चतुर्भूजरुपवाला मलाई प्रत्यक्ष हेर्नका निमित्तमा र तत्वदेखि जान्नका लागी अथा प्रवेश गर्नका गर्नका लागी अर्थात् एकै भावले प्राप्त हुनका लागि पनि शक्य छु ।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥५५॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! जो पुरुष केवल मेरै लागि (सबै मेरै सम्झेर) यज्ञदान र तप आदि सम्पूर्ण कर्तव्य कर्महरुलाई गर्दछ अरु फेरि मैमा परायण छ अर्थात् मैमा परम आश्रय र परम गति मानेर मेरा प्राप्तिका लागि तत्पर छ , तथा भक्त छ अर्थात् मेरा नाम गुण प्रभाव र रहस्यको श्रवण कीर्तन मनन ध्यान र पठन पाठनले प्रेमसहित निष्काम भावले निरन्तर अभ्यास गर्नेवाला छ अरु आसक्ति रहिक्त छ अर्थात स्त्री पुत्र र धनादि सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थहरुमा स्नेह रहित छ अनि सम्पूर्ण भुत प्राणीहरुमा वैरभावले रहित यस्तो त्यो अनन्य भक्तिवाला पुरुष मैमा प्राप्त हुन्छ ।

ॐ तत्सदिति श्रीमदभागवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णअर्जुनसंवादे विश्वरुपदर्शन योगो नाम एकादशोऽध्यायः ॥११॥

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भगवतगीता

द्वादशोऽध्याय

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥१॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारका भगवानका वचन सुनेर अर्जुन विन्ति गर्दछन् हे मनमोहन ! जो अनन्य प्रेमीभक्त जन यस पूर्वोक्त प्रकारले निरन्तर हजुरका भजन ध्यानमा लागेर हजुर सगुणरुप परमेश्वरको अत्यन्त श्रेष्ठ प्रकारले उपासना गर्दछन् भने ति दुबै प्रकारका भक्तहरुमा अति उत्तम योगवेत्ता कुन हो ।

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥२॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारले अर्जुनको प्रश्न सुनेर भगवान श्रीकृष्ण आज्ञा गर्नुहुन्छ हे अर्जुन ! मैमा मनंलाई एकाग्र गरेर निरन्तर मेरै भजन ध्यानमा लागेका जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धाले युक्त भएर म सगुण स्वरुप परमेश्वरको नै भजन गर्दछ भने यो मेरो भक्त योगीहरुमा पनि अत्यन्त उत्तम योगी मान्य हो अर्थात् त्यसलाई म अत्यन्त श्रेष्ठ मान्दछु ।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥३॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥४॥

भा.टी.- अरु जो पुरुष इन्द्रियहरुका समुदायलाई राम्रा प्रकारले वशमा गरेर समबुद्धिदेखि पर सर्वव्यापी अकथनीय स्वरुप र सदा एकरस रहनेवाला नित्य अचल निराकार अविनाशी सच्चिदानन्दघन ब्रह्मकै निरन्तर एकै भावले ध्यान गर्दै उपासना गर्दछन् भने ति सम्पूर्ण भूतहरुका हितमा रत भएर अरु सबैमा समान भाववाला योगी पनि मैमा नै प्राप्त हुन्छन् अर्थात् त्यो पनि आखिरीमा आएर मिल्दछ ।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःख देहवद्भिरवाप्यते ॥५॥

भा.टी.- परन्तु ती सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्ममा आसक्त भएका चित्तवाला पुरुषहरुंको साधनमा क्लेश अर्थात परिश्रम विशेष किनभने देहाभिमानीहरुले अव्यक्त विषयको गति दुःखपूर्वक प्राप्त गरिन्छ अर्थात जबसम्म शरीरमा अभिमान रहन्छ तब सम्म शुद्ध सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्ममा स्थित हुन कठिन छ ।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥६॥

भा.टी.- अरु जो ममा परायण भएका भक्तजन सम्पूर्ण कर्महरुलाई मैमा समर्पण गरेर म सगुणस्वरुप परमेश्वरलाई नै अनन्य ध्यानयोगले निरन्तर चिन्तन गर्दै भजन गर्दछन् ।

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसार सागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥७॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! ति ममा चित्त लाउने प्रेमी भक्तहरुलाई म छिटै मृत्युरुपी संसार समुद्रदेखि उद्धार गर्ने छु ।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥८॥

भा.टी.- यस निमित्त हे अर्जुन ! तिमी मैमा मन लगाएर फेरि मैमा बुद्धि पनि लगाउ यस उप्रान्त तिमी ममा नै निवास गरौला अर्थात ममा नै प्राप्त हौला, यसमा केहि पनि संशय छैन ।

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ॥९॥

भा.टी.- फेरि तिमी आफ्ना मनलाई ममा अचल गरेर स्थापना गर्नका लागि सामर्थ्यवान छैनौ भने त हे अर्जुन ! अभ्यासरुपी योगद्वारा मेरा प्राप्ति गर्नका निमित्त ईच्छा गर ।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥१०॥

भा.टी.- यदि तिमी माथि भनिएका अभ्यासमा पनि सामर्थ्य छौ भने केवल मेरा लागि कर्म गर्नमा नै परायण होऊ । यस प्रकार मेरा लागि कर्मादि गरेर पनि मेरो प्राप्ति रुप सिद्धिमा नै प्राप्त हुनेछौ ।

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥११॥

भा.टी.- यदि यसलाई पनि गर्नका लागि असमर्थ छौ भने त जितेका मनवाला र मेरा प्राप्तिरुपी योगका शरण भएका सबे कर्मादिका फलको मेरालागि त्याग गर ।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्धयानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥१२॥

भा.टी.- किनभने मर्म नजानेर गरेका अभ्यास भन्दा परोक्षज्ञान असल हो , फेरि परोक्षज्ञानभन्दा परमेश्वरका स्वरुपको ध्यान श्रेष्ठ हो , अनि ध्यान भन्दा पनि सबै कर्म फलको मेरा निमित्त अर्पण गर्नु श्रेष्ठ हो अरु त्यागले तत्कालै परम शान्ति मिल्दछ ।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥१३॥

भा.टी.- यस प्रकारले शान्तिमा प्राप्त भैसकेको पुरुष सबै भूतहरुमा रीसराग रहित एव स्वार्थ रहित सबैको प्रेमी र हेतुरहित तथा ममतादेखि रहित एवं अहंकारले रहित सुखदुःखादिका

प्राप्तिमा सम र क्षमतावान छ अर्थात अपराध गर्नेलाई पनि अभय दिने ।

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१४॥

भा.टी.- फेरि जो ध्यानयोग युक्त भएको, निरन्तर लाभ हानिमा सन्तुष्ट छ, तथा मन र ईन्द्रिय सहितको शरीरलाई वशमा गरेर ममा दृढनिश्चयवाला छ, त्यो ममा अर्पण गरेको मन बुद्धिवाला मेरो भक्त मेरो प्रिय छ ।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥१५॥

भा.टी.- जसदेखि कोही जीव पनि उद्वेगमा प्राप्त हुँदैन अरु जो (स्वयं पनि) कसै जीवदेखि उद्वेगतामा प्राप्त हुदैन, फेरि जो हर्ष अमर्ष भय र उद्वेगादिहरुदेखि रहित छ ,त्यहि भक्त मेरो अत्यन्त प्रिय छ ।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१६॥

भा.टी.- जो पुरुष आकांक्षादेखि रहित तथा बाहिरभित्र देखि शुद्ध र चतुर छ अर्थात् जुन कामका लागि आएको थियो उसैलाइ पुरा गरिसकेको छ, फेरि पक्षपातदेखि रहित र दुःखबाट छुटेको त्यो सर्व आरम्भादिको त्यागी मेरो भक्त मेरो प्रिय छ ।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः ॥१७॥

भा.टी.- फेरि जो न कहिले हर्षित हुन्छ, न द्वेष(रीस) गर्छ, न शोच गर्छ, न कामना गर्छ , फेरि जो शुभ अशुभ सम्पूर्ण कर्महरुका फलको त्यागी छ त्यो भक्तियुक्त पुरुष मेरो प्रिय छ।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥१८॥

भा.टी.- फेरि अरु जो पुरुष शत्रु मित्रमा र मान अपमानमा सम छ तथा सर्दी गर्मी अर्थात् जाडो गर्मी र सुखदुःखादिको द्वन्दादिमा सम छ अनि सबै संसारमा आसक्तिदेखि रहित छ ।

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः ॥१९॥

भा.टी.- फेरि जो निन्दा र स्तुतिलाई समान सम्झने अति मननशील छ एवं कुनै प्रकारले पनि शरीर निर्वाह भएमा सदा सन्तुष्ट छ , फेरि बस्ने ठाउँ घर आदिमा ममताले रहित छ त्यो स्थिर बुद्धिवाला भक्तिमान पुरुष सदा मेरो प्रिय छ ।

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥२०॥

भा.टी.- अरु जो ममा परायण भएका श्रद्धायुक्त पुरुष यस अगाडि भनिएका धर्ममय अमृतलाई निष्काम भावले सेवन गर्दछन् त भक्त मेरा अतिशय प्रिय छन् ।

ॐ तत्सदित्ति श्रीमदभगवद्गीतासूपनिषत्सु व्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भागवतगीता

त्रयोदशोऽयोध्यायः

भगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥१॥

भा.टी.- तहाँ उप्रान्त भगवान श्रीकृष्ण भगवान् फेरि आज्ञा गर्नु हुन्छ हे अर्जुन ! यो शरीर क्षेत्र हो , अरु यसलाई जो पुरुष जान्दछ त्यसलाई क्षेत्रज्ञ भन्ने यस्तो तिनको तत्व जान्नेवाला ज्ञानीजन भन्दछन् ।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तत्ज्ज्ञानं मतं मम ॥२॥

भा.टी.- अरु हे अर्जुन ! तिमी सबै क्षेत्रहरुमा क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा पनि मलाई नै जान अरु क्षेत्र र क्षेत्रज्ञको अर्थात् विकार सहित प्रकृतिको र पुरुष जो तत्वदेखि जान्नु हो त्यो ज्ञान हो भन्ने यस्तो मेरो मत छ ।

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे श्रृणु ॥३॥

भा.टी.- त्यो क्षेत्र जो अरु जस्तो हो तथा जुन विकारवाला छ अरु जुन कारणले जो भएको छ अनि त्यो क्षेत्रज्ञ पनि जो छ अरु अरु जुन प्रभाववाला छ त्यो सबै संक्षेपले मबाट सुन ।

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसुत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥४॥

भा.टी.- यो क्षेत्र र क्षेत्रज्ञको तत्व ऋषिहरुद्वारा धेरै प्रकारले बताईएको छ अर्थात् सम्झाईएको छ अरु नानाप्रकारका वेद मन्त्रहरुले विभागपूर्वक बताईएका छन् , फेरि राम्रो निश्चय गरिएका युक्तियुक्त ब्रह्मसुत्रका पदहरुद्वारा पनि उस्तै नै भनिएको छ ।

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥५॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! अनि म तिम्रा लागि भन्दछु कि पाँच महाभूत अहंकार बुद्धि र मूलप्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी माया पनि र फेरि दश ईन्द्रियहरुका विषय अर्थात् शब्द, स्पर्श, रुप, रस, गन्ध ।

इच्छा द्वेषः सुखं दु:खं संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥६॥

भा.टी.- इच्छा, द्वेष, सुख, दु:ख, र स्थुल देहको पिण्ड अरु चेतनता र धृति यस प्रकारले यो क्षेत्र विकारादिका सहित संक्षेपले भनियो ।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥७॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! श्रेष्ठताका अभिमानको अभाव, दम्भाचरणको अभाव , प्राणीमात्रलाई कुनै प्रकारले पनि नसताउनु अरु क्षमाभाव फेरि मन , वाण(ीको सरलता, श्रद्धाभक्ति सहित गुरुको सेवा , बाहिरभित्रको शुद्धि र अन्तःकरणको स्थिरता, मन र इन्द्रियादि सहित शरीर निग्रह ।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥८॥

भा.टी.- यो लोक र परलोक सम्पूर्ण भोगादिमा आसक्तिको अभाव अर्थात आसक्ति नहुनु अरु अहंकारको पनि अभाव एवं जन्म ,मृत्यु, जरा र रोगादिमा दुःख दोषादिको बारम्बार विचर गर्नु ।

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥९॥

भा.टी.- फेरि पुत्र, स्त्री ,घर र धनादिमा आसक्तिको अभाव अरु ममता कत्ति पनि नहुनु फेरि प्रिय र अप्रियादि वस्तुका प्राप्तिमा सदा सर्वदा चित्तलाई समानतामा राख्नु अर्थात् मनको अनुकुल र प्रतिकुल प्राप्त हुँदा पनि शोकादि विकार नहुनु ।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥१०॥

भा.टी.- अनि फेरि म परमेश्वरमा एकै भावले स्थितयोग ध्यानयोगका द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति तथा एकान्त र शुद्ध देशमा रहनाको स्वभाव अरु विषयासक्त मनुष्यहरुको समूदायमा प्रेम नहुनु ।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥११॥

भा.टी.- अनि अध्यात्म ज्ञानमा सदा स्थित र तत्वज्ञानका अर्थरुप परमात्मालाई सर्वत्र देख्नु, यो सबै ज्ञान हो अरु जो यस देखि विपरीत छ त्यो अज्ञान हो भन्ने यस्तो भानिएको छ ।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥१२॥

भा.टी.- अरु पनि हे अर्जुन ! जो जान्न योग्य छ तथा जसलाई जानेर मनुष्य परमानन्दमा प्राप्त हुन्छ त्यो राम्रा प्रकारले कहन्छु, त्यो आदिरहित परब्रह्म अकथनीय हुनाले न सत् भनिन्छ न असत् भनिन्छ ।

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१३॥

भा.टी.- तर ति सबै तर्फबाट हातपाउ वाला र अनि सबै तर्फबाट नेत्र शिर मुखवाला , फेरि सबै तर्फबाट कानवाला छन् , किनभने ति संसारमा सबेलाई व्याप्त गरेर स्थित छन् ।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥१४॥

भा.टी.- सम्पूर्ण ईन्द्रियादिका विषयादिलाई जान्ने छ, तर वास्तवमा सबै ईन्द्रियादिले रहित छ फेरि आसक्तिरहित र गुणहरुदेखि अतीत भएर पनि आफ्नी योगमायाले सबैको धारण पोषण गर्ने र गुणहरुको भोग गर्ने हो ।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्ति के च तत् ॥१५॥

भा.टी.- अनि ति परमात्मा चराचर सबै भूतादिक बाहिरभित्र परिपूर्ण छन् , चर अचर रुप पनि उनै हुन्, फेरि त्यो सूक्ष्म हुनाले अविज्ञेय छन् , अनि फेरि अत्यन्त नजीकै र टाढा पनि उस्तै स्थित छन् ।

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥१६॥

भा.टी.- अनि फेरि त्यो विभागरहित एकै रुपले आकाशका सद्दश परिपूर्ण भएर पनि चराचर सम्पूर्ण भूतादिमा पृथक-पृथकका सद्दश स्थित प्रतीत हुन्छ तथा त्यो जान्न योग्य परमात्मा विष्णुरुपले भूतादि धारण पोषण गर्ने र रुद्ररुपले संहार गर्ने फेरि ब्रह्मारुपले सबैलाई उत्पन्न गर्ने हो ।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥१७॥

भा.टी.- अनि त्यो ब्रह्म ज्योतिरुपको पनि ज्योति एवं मायादेखि अति पर भनिन्छ फेरि ति परमात्मा बोधरुप र जान्नयोग्य अनि तत्वज्ञानले प्राप्त हुने सबैका हृदयमा स्थित छन् ।

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥१८॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! यसप्रकार क्षेत्र र तथा ज्ञान र जान्नयोग्य परमात्माको स्वरुप संक्षेपले भनियो , यसलाई तत्वसहितले जानेर मेरा मेरै स्वरुपमा प्राप्त हुन्छन् ।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धयनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥१९॥

भा.टी.- अरु हे अर्जुन ! प्रकृति अर्थात त्रिगुणमयी मेरी माया र जीवात्मा अर्थात् क्षेत्रज्ञ यी दुबैलाई नै तिमी अनादि अरु राग द्वेषादि विकारहरुलाई र त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थहरुलाई पनि प्रकृतिदेखि नै उत्पन्न भएका मान्ने जान ।

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥२०॥

भा.टी.- किनभने कार्य र कारणलाई उत्पन्न गर्नमा हेतु प्रकृति कहिएकी छन्, फेरि जीवात्मा सुखदु:खादिका भोक्तापनमा अर्थात् भोग्नका लागी भनिएको हो ।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥२१॥

भा.टी.- परन्तु प्रकृतिमा स्थित भएकोले नै पुरुष प्रकृतिदेखि उत्पन्न भएका त्रिगुणात्मक सबै पदार्थलाई भोग गर्दछ, अनि फेरि यी गुणहरुको सङ्गनै यस जीवात्माका राम्रा र खराब योनिहरुमा जन्म लिनुका कारण हुन्छ ।

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥२२॥

भा.टी.- वास्तवमा त यो पुरुष यसै देहमा स्थित भएर पनि परै छ, केवल साक्षी हुनाले उपद्रष्टा र यथार्थ सम्मति दिने हुनाले अनुमन्ता एवम् सबैलाई धारण गर्ने हुनाले भर्ता जीवरुपले भोक्ता र अनि ब्रह्मादिहरुका पनि स्वामी हुँदा महेश्वर शुद्धसच्चिदानन्दघन हुनाले परमात्मा भन्ने यस्तो भनिएको छ ।

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजाहते ॥२३॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारले पुरुष र गुणहरुका सहित प्रकृतिलाई जो मनुष्य तत्वदेखि जान्दछ त्यो सबै प्रकारले वर्तेर पनि फेरि जन्मदैन अर्थात् पुनर्जन्ममा प्राप्त हुँदैन ।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥२४॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! त्यो परमपुरुष परमात्माको कति मनुष्यहरु त शुद्ध भएको शूक्ष्माबुद्धिले ध्यानद्वारा हृदयमा देख्तछन् , फेरि अरु कयौं मनुष्यहरु ज्ञानयोगद्वारा देख्तछन्, अरु कति मनुष्य त निष्काम कर्मयोगद्वारा देख्तछन् ।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥२५॥

भा.टी.- परन्तु यि देखि दोस्रा अर्थात् जो मन्दबुद्धि पुरुष छन् ति स्वयं यस प्रकार न जान्दै दोस्रादेखि तत्वलाई जान्ने भएका पुरुषहरुदेखि सुनेर नै उपासना गर्दछन् , फेरि ति सुन्नलाई परायण भएका पुरुषहरु पनि मृत्युरुपी संसार सागरबाट निःसन्देह तरेर पनि जान्छन् ।

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥२६॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! यावन्मात्र जोसुकै स्थावर र जङ्गम वस्तु उत्पन्न हुन्छन् ति सम्पूर्णलाई क्षेत्र र क्षेत्रज्ञको संयोगले नै भएका भन्ने जान ।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥२७॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारले जानेर जो पुरुष नष्ट हुन लागेका सबै चराचर भूतहरुमा नाशरहित परमेश्वरलाई समभावले स्थित देख्दछ, त्यसले नै देख्तछ ।

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥२८॥

भा.टी.- किनभने त्यो पुरुष सबैमा समभावले स्थित भएका परमेश्वरलाई समान देख्दै आफैद्वारा आफैलाई नष्ट गर्देन भने यसले त्यो परम गतिमा प्राप्त हुन्छ ।

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥२९॥

भा.टी.- अरु जो पुरुष सम्पूर्ण कर्महरुलाई सबै प्रकारले प्रकृतिदेखिनै गरिएको देख्दछ, अनि आत्मालाई अकर्ता देख्दछ भने त्यै देख्ने हो अर्थात् देख्दछ ।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥३०॥

भा.टी.- अनि यो पुरुष जसै कालमा भूतहरुको अलग भावलाई एकै परमात्माका संकल्पका आधारले स्थित भएको देख्दछ, तथा उस परमात्माका संकल्पले नै सम्पूर्ण भूतहरुको विस्तार देख्दछ भने उसै कालमा सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममा प्राप्त हुन्छ ।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति लिप्यते ॥३१॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! अनादि हुनाले र गुणातीत हुनाले यो अविनाशी परमात्मा शरीरमा स्थित भएर पनि वास्तवमा न गर्दछ न लेपायमानै हुन्छ ।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥३२॥

भा.टी.- जसरी सर्वत्र व्याप्त भएर पनि आकाश शूक्ष्म हुनाले लेपायमान हुँदैन, उस्तै देहमा स्थित भएर पनि आत्मा गुणातीत हुनाले देहका गुणहरुदेखि लेपायमान हुँदैन ।

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥३३॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! जस्ता प्रकारले एउटै सूर्यले यो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डलाई प्रकाशित गर्दछन् , उस्तै प्रकारले एकै आत्माले सम्पूर्ण क्षेत्रलाई प्रकाशित गर्दछ । अर्थात् नित्यबोध स्वरुप आत्माकै सत्ताले सम्पूर्ण जडवर्ग प्रकाशित हुन्छ ।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥३४॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारले क्षेत्र र क्षेत्रज्ञको भेद तथा विकार सहित प्रकृतिदेखि छुट्नको उपाय जो पुरुष ज्ञाननेत्रद्वारा तत्वदेखि जान्दछन् ती महात्माजन परब्रह्म परमात्मामा प्राप्त हुन्छन् ।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भागवतगीता

चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीभगवनुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥१॥

भा.टी.- तहाँ उप्रान्त श्रीकृष्ण भगवान् आज्ञा गर्नुहुन्छ हे अर्जुन ! ज्ञानमा पनि अति उत्तम ज्ञान फेरि तिम्रा लागि भन्दछु, जसलाई जानेर सबै मुनीजन यस संसारदेखि मुक्त भएर परमसिद्धिमा प्राप्त भएथें ।

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥२॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! यो ज्ञानको आश्रय गरेर अर्थात् धारण गरेर मेरा स्वरुपमा प्राप्त भएका पुरुष सृष्टिका आदिमा पुनः फेरि उत्पन्न हुदैनन् । प्रलयकालमा पनि व्याकुल हुदैनन् किनभने तिनका दृष्टिमा म वासुदेवदेखि भिन्न अरु केही वस्तु छैन ।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥३॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! मेरी महद् ब्रह्मरुपी प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी माया भूतहरुकी योनि हुन् अर्थात् गर्भाधानको स्थान हो , फेरि म त्यो योनिमा चेतनरुपी वीजको स्थापना गर्दछु, त्यस जड चेतनका संयोगले सबै भूतहरुको उत्पत्ति हुन्छ ।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥४॥

भा.टी.- अनि हे अर्जुन ! नाना प्रकारका सबै योनिहरुमा जति प्रकारका मूर्तिहरु अर्थात् शरीर उत्पन्न हुन्छन् ती सबैकी त्रिगुणमयी माया नै गर्भमा धारण गर्ने माता हुन्, अरु फेरि स्वयं म वीजलाई स्थापना गर्ने पिता हूँ ।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥५॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! सत्वगुण, रजोगुण र तमोगुण यस्ता यि प्रकृतिदेखि उत्पन्न भएका तीनै गुण यंस अविनाशी जीवात्माका शरीरमा बाँधिन्छन् ।

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥६॥

भा.टी.- हे निष्पाप ! ति तिनै गुणहरुमा प्रकाश गर्ने निर्विकार र सत्यगुणता निर्मल हुनाका कारण सुखका आशक्तिले र ज्ञानका आसक्तिले अर्थात ज्ञानका अभिमानले बाँधदछ।

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥७॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! रागरुपी रजोगुणलाई कामना र आसक्तिदेखि उत्पन्न भएको भन्ने जान, त्यो यस जीवात्मालाई कर्महरुका र तिनका फलका आसक्तिले बाँध्दछ ।

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥८॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! सर्व देहाभिमानीहरुलाई मोहाउने अर्थात् मोह गर्ने तमोगुणलाई अज्ञानदेखि उत्पन्न भएको भन्ने जान । त्यो यस जीवात्मालाई प्रमाद(पागलपन) आलस्य र निन्द्राद्वारा बाँधदछ ।

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥९॥

भा.टी.- किनभने हे अर्जुन ! सत्वगुण जो छ त्यो सुखमा लगाउँछ अरु रजोगुण जो छ त्यो कर्ममा लगाउँछ, फेरि तमोगुण चाहिँ त आच्छादित गरेर अर्थात् ढाकेर पागलपनामा लगाउँछ ।

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥१०॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! रजोगुण र तमोगुणलाई दबाएर सत्वगुण हुन्छ अर्थात् सत्वगुण बढ्छ । फेरि रजोगुण र सत्वगुणलाई दबाएर

तमोगुण बढ्छ, उस्तै फेरि तमोगुण र सत्वगुणलाई दबाएर रजोगुण बृद्धि हुन्छ ।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥११॥

भा.टी.- यस निमित्त जुन कालमा यस देहमा तथा अन्तःकरण र ईन्द्रियहरुमा चेतना र बोधशक्तिको उत्पत्ति हुन्छ त्यसकालमा यस्तो जान्नु पर्छ कि सत्वगुण बढ्छ ।

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥१२॥

भा.टी.- फेरि महाबाहो ! रजोगुणको वृद्धि भएपछि लोभ र प्रवृति अर्थात् सांसारिक चेष्टा तथा सबै प्रकारका कर्महरुको स्वार्थबुद्धिले आरम्भ एवं अशान्ति अर्थात् मनको चञ्चलता र विषय भोगादिको लालसा यी सबै उत्पन्न हुन्छ ।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥१३॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! तमोगुणको वृद्धि भएपछि अन्तःकरण ईन्द्रियहरुमा अप्रकाश एवं कर्तव्यकर्ममा अप्रवृत्ति र प्रमाद अर्थात व्यर्थ चेष्टा अनि निद्रादि अन्तःकरणका मोहनी वृत्तिहरु यि सबै उत्पन्न हुन्छन् ।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥१४॥

भा.टी.- अनि हे अर्जुन ! जब यो जीवात्मा सत्वगुणका वृद्धिमा अर्थात् सत्वगुणको उदय भएका बेलामा मर्दछ , तब त त्यो उत्तम कर्म गर्ने मलरहित अर्थात् दिव्य स्वर्गादि उत्तम लोकमा प्राप्त हुन्छ ।

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥१५॥

भा.टी.- फेरि रजोगुणको वृद्धि भएको बेलामा मृत्यु भएमा कर्मादिका आसक्तिवाला मनुष्यमा उत्पन्न हुन्छ । तमोगुण वृद्धि भएको बेलामा मरेका पुरुष मूढ (किट, पतङ्ग, पशु आदि) योनिहरुमा उत्पन्न हुन्छ ।

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥१६॥

भा.टी.- किनभने सात्विक कर्मको त सात्विक अर्थात् सुख, ज्ञान वैराग्यादि निर्मल फल बताइएको छ , अरु राजस कर्मको फल अज्ञान भनिएको छ ।

सत्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥१७॥

भा.टी.- अनि सत्वगुणदेखि ज्ञान उत्पन्न हुन्छ। फेरि रजोगुणदेखि निःसन्देह लोभ उत्पन्न हुन्छ तथा तमोगुणदेखि प्रमाद र मोह आदि उत्पन्न हुन्छ र त्यसबाछ अज्ञान पनि हुन्छ।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥१८॥

भा.टी.- यस निमित्त सत्वगुणमा स्थित स्वर्गादि उच्चलोकमा जान्छन्। अरु रजोगुणमा स्थित राजस पुरुष मध्येमा अर्थात् मनुष्यलोकमै रहन्छ। फेरि ति तमोगुणका कार्य रुपी निन्द्रा प्रमाद र आलस्यादिमा स्थित भएका तामसी पुरुष अधोगतिमा अर्थात् कीट, पशु आदि नीच योनिमा प्राप्त हुन्छन् अर्थात् तिनै निच योनिमा गएर जन्म हुन्छ।

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥१९॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! जसकालमा द्रष्टा अर्थात् समष्टि चेतनामा एकीभावले स्थित भएको साक्षी पुरुष तीनै गुणहरुका सिवाय अरु कसैलाई कर्ता देख्दैन अर्थात् गुणैगुणमा वर्तन्छ भन्ने यस्तो देख्दछ र तीनै गुणदेखि अनिपर सच्चिदानन्दघन मै वासुदेव परमात्मालाई तत्वदेखि जान्दछ भने उसकालमा त्यो पुरुष मेरै स्वरुपमा प्राप्त हुन्छ।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥२०॥

भा.टी.- अनि ति पुरुष यिनै स्थिुल शरीरका उत्पत्तिका कारणरुप तीनै रुपहरुको उल्लंघन गरेर जन्म मृन्यु बृद्धावस्था र सबै प्रकारका दुखादिदेखि मुक्त भएर परमानन्दमा प्राप्त हुन्छ ।

अर्जुनउवाच

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो।
किमाचरः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥२१॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारका रहस्ययुक्त भगवानका वचन सुनेर अर्जुन सोद्धछन् कि हे पुरुषोत्तम ! यी तीनै गुणदेखि अतीत भएका पुरुषहरु कुन कुन लक्षणहरुले युक्त भएका हुन्छन् अरु फेरि कस्ता कस्ता प्रकारका आचरणवाला हुन्छन् अनि हे प्रभो ! मनुष्यहरु कुन उपायले यी तीनै गुणदेखि अतीत हुन्छन् ।

श्रीभगवानुवाच

प्रकाशं च प्रवत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥२२॥

भा.टी.- यस्ता प्रकारका अर्जुनका प्रश्न सुनेर भगवान् श्रीकृष्ण आज्ञा गर्नुहुन्छ कि हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! जो पुरुष सत्वगुणका कार्यरुप प्रकाशलाई र रजोगुणका कार्यरुप प्रवृत्तिलाई फेरि तमोगुण कार्यरुपी मोहलाई पनि न त प्रवित्त भएमा खराब सम्झन्छन् फेरि न निवृत्त हुदाँमा तिनको आकाङ्क्षा नै गर्दछन् ।

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥२३॥

भा.टी.- फेरि जो साक्षीका सदृश भएर गुणहरुकाद्वारा विचलित गर्न सकिदैन अनि गुणै गुणहरुमा वर्तन्छन् यस्तो सम्झिदै जो पुरुष सच्चिदानन्दघन परमात्मामा एकै भावले स्थित रहन्छ फेरि त्यस स्थितिदेखि चलायमान हुँदैन ।

समदु:खसुख: स्वस्थ: समलोष्टाश्मकाञ्चन: ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुति: ॥२४॥

भा.टी.- अरु जो आत्मभावमा स्थिर भएर दु:ख र सुखलाई समान सम्झनेछ फेरि माटो, पत्थर र सुवर्णादिमा समान भाववाला र धैर्यवान् छ अनि जो प्रिय र अप्रियलाई पनि बराबर सम्झन्छ, आफ्नो निन्दा र स्तुतिमा पनि समान भाववाला छ ।

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयो: ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीत: स उच्यते ॥२५॥

भा.टी.- फेरि जो मान र अपमानमा सम छ अनि मित्र र शत्रुका पक्षमा पनि समान भाव राख्ने र सम्पूर्ण कार्यका आरम्भमा कर्तापनका अभिमानदेखि रहित भएको पुरुष जो छ त्यो गुणातीत हुन्छ ।

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥२६॥

भा.टी.- अरु जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तिरुप योगका द्वारा मेरो निरन्तर भजन गर्दछ भने त्यो यि तीनै गुणहरुलाई राम्रा प्रकारले

उल्लङ्घन गरेर सच्चिदानन्दघन परब्रह्ममा एकै भाव हुनाका लागि योग्य हुन्छ ।

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥२७॥

भा.टी.- फेरि हे अर्जुन ! अभिनाशी परब्रह्मको र अमृतको अनि नित्य धर्मको र अरु अखण्ड एकरस आनन्दको मै आश्रय हूँ अर्थात उपरोक्त ब्रह्म, अमृत, अव्यय र शाश्वत धर्म, एकान्तिक सुख, यो सबै मेरो नाम हो । यस निमित्त यिनको म परम आश्रय हूँ ।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्याय: ॥१४॥

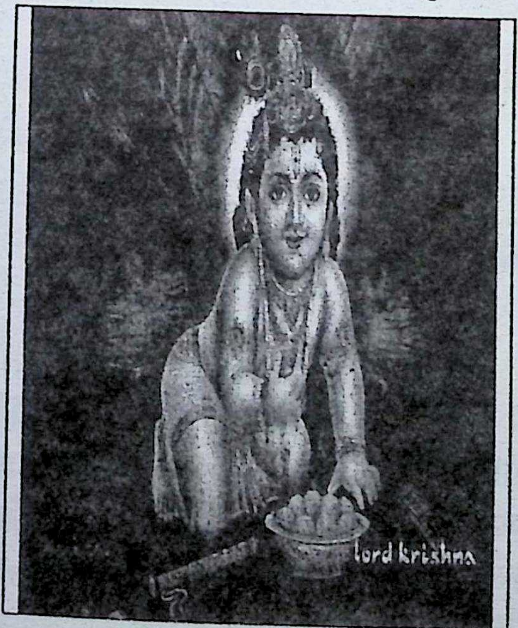

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भागवतगीता

पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

ऊर्ध्वमूलमधः शाखामश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥१॥

भा.टी.- त्यहाँ उप्रान्त भगवान श्रीकृष्ण आज्ञा गर्नहुन्छ हे अर्जुन ! आदिपुरुष परमेश्वर मूलवाला ब्रह्मारुप मुख्य शाखा (हाँगा)वाला जुन संसाररुप पीपलका वृक्षलाई आविनाशी भन्दछन् फेरी जसलाई बेदका पात भनिएका छन्, त्यस संसाररुप वृक्षलाई जुन पुरुषले मूल सहित तत्वबाट जान्दछ, त्यो वेदका तात्पर्यलाई जान्नेवाला हो ।

अधश्चोर्ध्व प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥२॥

भा.टी.- अरु हे अर्जुन ! त्यस संसार वृक्षका तीनै गुणरुपी जलकाद्धारा बढेको एवं विषय भोगरुपी कोपिलावाला देव, मनुष्य र तिर्यक आदि योनिरुप शाखाहरु तल र माथि सर्वत्र फैलिरहेका छन् । फेरि मनुष्य योनिमा कर्मका अनुसार बाँध्नेवाला अहंता, ममता र वासनारुप जराहरु पनि तल र माथि सबै लोकमा व्याप्त भैरहेका छन् ।

न रुपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरुढमूलमसङ्गशस्त्रेण
दृढेन छित्त्वा ॥३॥

भा.टी.- तर यस संसाररुपी वृक्षको स्वरुप जस्तो भनियो उस्तै यहाँ विचार कालमा पाइँदैन किनभने न त यसको आदि छ न फेरि राम्रा प्रकारले स्थितिनै छ , यस निमित्त यस अहंता , ममता र वासनारुपी अत्यन्त दृढ मूलवाला संसाररुपी पीपलका वृक्षलाई दृढ वैराग्यरुपी शस्त्रद्वारा काटेर ।

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणि ॥४॥

भा.टी.- त्यहाँ उप्रान्त परमपदरुपी परमेश्वरलाई राम्रा प्रकारसँग खोज्नु पर्दछ, किनकि जसमा गैसकेको पुरुष फेरि पछि संसारमा फर्केर आउदैन अरु जुन परमेश्वरदेखि यो पुरातन संसारवृक्षको प्रवृत्ति विस्तारमा प्राप्त भयो , उसै आदिपुरुष नारायणका शरणमा म छु भन्ने यस्तो निर्णय गरेर ।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥५॥

भा.टी.- नष्ट भैसकेको छ मान र मोह जसको , फेरि जितिसकेको छ आसक्तिरुप दोष जसले, अरु परमात्माका स्वरुपमा छ निरन्तर स्थिति जसको , अनि फेरि राम्रा प्रकारले नष्ट भइसकेको छ कामना जति सबै जसको यस्ता ति सुखदुःख नामक द्वन्दहरुदेखि विमुक्त भएका ज्ञानीजन त्यो अविनाशी परमपदमा प्राप्त हुन्छ ।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥६॥

भा.टी.-त्यस स्वयं प्रकाश परमपदलाई न सूर्यले प्रकाशित गर्न सक्छन् न चन्द्रमाले प्रकाश गर्दछन्, फेरि न त अग्निले नै प्रकाशित गर्न सक्दछ यस्तो त्यो परमपदमा प्राप्त भएर मनुष्य फेरि पछि संसारमा फर्केर आउँदैनन्, त्यो मेरै परमधाम हो ।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥७॥

भा.टी.- अनि हे अर्जुन ! यस देहमा यो जीवात्मा मेरै सनातन अंश हो अरु त्यो त्रिगुणमयी मायामा स्थित भएका मनका सहित पाँचै ईन्द्रियहरुलाई आकर्षण गर्दछ ।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥८॥

भा.टी.- कस्तो भने वायुले गन्धका स्थानदेखि गन्धलाई जसरी ग्रहण गरेर लिन्छ उस्तै प्रकारले देहादिहरुको स्वामी जीवात्मा पनि जुन पहिलेका शरीरलाई त्याग्दछ त्यस देखि यि मन सहितका ईन्द्रियहरुलाई ग्रहण गरेर फेरि शरीरमा प्राप्त हुन्छ र त्यसैमा जान्छ ।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥९॥

भा.टी.- अनि त्यो शरीरमा स्थित भएको यो जीवात्मा श्रोत्र चक्षु र त्वचा, रसना, घ्राण र अनि मनलाई आश्रय सेवन गर्दछ ।

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥१०॥

भा.टी.- तर शरीर छोडेर गएका बेलामा वा शरीरमा स्थित भएर विषयादिको भोग भोग्दै अथवा तीनै गुणहरुले युक्त भएका पनि अज्ञानीजन जान्न सक्दैनन्, खालि ज्ञानरुपी नेत्रवाला ज्ञानीजनहरुमात्रै तत्वज्ञानले जान्दछन् ।

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥११॥

भा.टी.- किनभने योगीजन पनि आफ्ना हृदयकमलमा स्थित भएका यस आत्मालाई यत्न गर्दै तत्वज्ञानले जान्दछन् , अरु जसले आफ्ना अन्तःकरणलाई शुद्ध गरेको छैन यस्ता अज्ञानीजन त यस आत्मालाई यत्न गर्दागर्दै पनि पाउदैनन् ।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ॥
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धिमामकम् ॥१२॥

भा.टी.- अरु हे अर्जुन ! जो तेज सूर्यमा स्थित भएर सम्पूर्ण जगतलाई प्रकाशमान गर्दछ अनि त्यै तेज चन्द्रमामा स्थित भएको छ, अरु जुन तेज अग्निमा स्थित छ त्यसलाई तिमीले मेरै तेज भन्ने जान ।

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥१३॥

भा.टी.- अनि फेरि मै पृथ्वीमा प्रवेश गरेर आफ्ना शक्तिले सबै भूतादिलाई धारण गर्दछु, अरु रसस्वरुप अर्थात अमृतमय चन्द्रमा भएर सम्पूर्ण औषधि अर्थात वनस्पतिहरुलाई पुष्ट गर्दछु ।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥१४॥

भा.टी.- मै सब प्राणीहरुका शरीरमा स्थित भै वैश्वानर अग्निरुप भएर प्राण र अपानले युक्त भएका चार प्रकारका अन्नलाई पचाउँछु ।

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥१५॥

भा.टी.- फेरि मै सबै प्राणीहरुमा हृदयमा अन्तर्यामीरुपले स्थित छु, मदेखि नै स्मृति ज्ञान र अपोहन हुन्छ अनि सबै वेदहरुकाद्वारा मैं जान्नमा योग्य छु वेदान्तको कर्ता र वेदहरुलाई जान्ने पनि मै हूँ ।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥१६॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! यस संसारमा नाशवान र अविनाशी यी दुई प्रकारका पुरुष छन् , तिनमा सम्पूर्ण भूत प्राणीहरुका शरीर त नाशवान र जीवात्मा कहिएको छ ।

उत्तमः पूरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥१७॥

भा.टी.- फेरि ति दुबैदेखि उत्तम पुरुष त अरुनै छ जो कि तीनै लोकमा प्रवेश गरेर सबैको धारण पोषण गर्दछ एवं अविप्राशी परमेश्वर र परमात्मा भंन्ने यस्तो भनिएको छ ।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥१८॥

भा.टी.- किनभने म नाशवान जडवर्ग क्षेत्रदेखि त सर्वथा अतीत छु अरु मायामा स्थित भएका अविनाशी जीवात्मा भन्दा पनि उत्तम छु, यस निमित्त लेकमा र वेदमा पनि पुरुषोंत्तम नामले प्रसिद्ध छु ।

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥१९॥

भा.टी.- हे भारत ! यसप्रकार तत्वदेखि जो ज्ञानी पुरुष मलाई पुरुषोत्तम भन्ने जान्दछन्, त्यो सर्क्षज्ञ पुरुष सबै प्रकारले निरन्तर म वासुदेवको नै भजन गर्दछ ।

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥२०॥

भा.टी.- हे निष्पापी अजुन ! यस्तो यो अति रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र मद्वारा भनियो यसलाई तत्वदेखि जानेर मनुष्य ज्ञानवान र कृतार्थ हुन्छन् अर्थात् त्यसको अरु केहि पनि बाँकि रहदैन । यस अध्यायमा भगवानले आफ्नो परमगोपनीय प्रभाव राम्रा प्रकारले भन्नुभएको छ । जो मनुष्य उक्त प्रकारले भगवानलाई सर्वोत्तम सम्भन्छ भने फेरि त्यसको मन एक क्षण पनि भगवानका चिन्तनको त्याग गर्नै सक्दैन किनभने जुन वस्तुलाई मनुष्य उत्तम सम्भन्छ त्यसैमा उसको प्रेम हुन्छ, उसैको चिन्तन हुन्छ । अतएव सबैको, मुख्य कर्तव्य यो हो कि भगवानको परमगोपनीय प्रभावलाई राम्रा प्रकारले सम्भनाका लागि नाशवान क्षणभंगुर संसारका आसक्तिको सर्वथा त्याग गरेर फेरि परमात्मको शरण भई भजन र सत्सङ्गको नै विशेष चेष्टा गर्नु ।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषेत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भगवतगीता

षोडशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥१॥

भा.टी.-त्यहाँ उप्रान्त भगवान श्रीकृष्ण आज्ञा गर्नुहुन्छ दैवी सम्पत्ति जुन पुरुषहरुलाई भैसकेको छ अनि फेरि जसलाई आसुरी सम्पत्ति प्राप्त छ, तिनको लक्षण फरक फरक गरेर भन्छु, ति मध्ये सर्वथा भयको अभाव, अन्तःकरणको राम्रा प्रकारले स्वच्छता, तत्वज्ञानका लागि ध्यानयोगमा निरन्तर दृढ स्थित, र सात्विकदान तथा ईन्द्रियहरुको दमन भगवत पूजा अरु अग्निहोत्रादि उत्तम कर्महरुको आचरण एवं वेद शास्त्रको पठनपाठन पूर्वक भगवतका नाम गुणहरुको कीर्तन अनि स्वधर्म पालनका लागि कष्ट सहन गर्नु एवं शरीर र ईन्द्रियहरुका अन्तःकरणको सरलता ।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥२॥

भा.टी.- मन, वाणी र शरीर कुनै प्रकारले पनि कसैलाई कष्ट नदिनु , अनि यथार्थ सत्य र प्रिय भाषण आफ्ना उपकार गर्ने माथि पनि क्रोध नगर्नु , कर्महरुमा कर्तापनको अभिमानको त्याग एवं अन्तःकरणका उपरामता अर्थात चित्तका चञ्चलताको अभाव र कसैको पनि निन्दा नगर्नु तथा सव भूतप्राणीहरुमा हेतुरहित

दया, ईन्द्रियहरुका विषयादिका साथ संयोग हुँदा पनि आसक्ति नहुनु, अरु कोमलता फेरि लोक र शास्त्रदेखि विरुद्ध आचरणमा लज्जा र व्यर्थ चेष्टाको अभाव ।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥३॥

भा.टी.-तेज, क्षमा, धैर्य र बाहिरभित्रको शुद्धि एवं कसैमा पनि शत्रुभाव नहुनु र आफ्ना पूज्यताको अभाव यो सबै त हे अर्जुन ! दैवी सम्पत्तिमा प्राप्त भएका पुरुषको लक्षण हो ।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च कोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥४॥

भा.टी.- हे पार्थ ! पाखण्ड, घमण्ड, र अभिमान तथा क्रोध अरु कठोर वाणी एवं अज्ञान पनि यो सबै आसुरी सम्पत्ति प्राप्त भएका पुरुषको लक्षण हो ।

दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।
मा शुचः संपददैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥५॥

भा.टी.- ति दुवै प्रकारका सम्पदाहरुमा दैवी सम्पदा त मुक्तिका लागि र आसुरी सम्पदा बन्धनका लागि मानिएको छ, यसकारण हे अर्जुन ! तिमी शोक नगर किनभने तिमी दैवी सम्पदामा प्राप्त भएका छौ ।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशःप्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥६॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! यस लोकहरुमा भूतहरुको स्वभाव दुई प्रकारको मानिएका छन् । एक त देवताको जस्तो र दोस्रो असुरहरु जस्तो । त्यसमा देवताहरुको स्वभावनै विस्तारपूर्वक भनिएको छ, यस निमित्त अब असुरहरुको स्वभाव पनि मदेखि तिमी विस्तारपूर्वक सुन ।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥७॥

भा.टी.-हे अर्जुन ! आसुरी स्वभाववाला मनुष्य कर्तव्यकार्यमा प्रवृत्त हुन र अकर्तव्य कार्यबाट निवृत्त हुन पनि जान्दैनन्, यस निमित्त तिनमा न त बाहिरभित्रको शुद्धि छ, न श्रेष्ठ आचरण छ , अरु न सत्य भाषण नै छ ।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्काम हैतुकम् ॥८॥

भा.टी.- ती आसुरी प्रकृतिवाला मनुष्य भन्छन् कि जगत आश्रय रहित र सर्वथा झुटो एवं विना ईश्वरको आफैं आफ स्त्री पुरुषका संयोगले उत्पन्न भएको हो , यस निमित्त केवल भोगादि भोग्नका लागि नै यसका सिवाय अरु के छ ।

एतां दृष्टिभवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥९॥

भा.टी.-यस्ता प्रकार यो मिथ्या ज्ञानको अवलम्बन गरेर नष्ट भै सकेको छ स्वभाव जसको फेरि मन्द बुद्धि छ जस्का यस्ता ति सबैको उपकार गर्ने कूरकर्मी मनुष्य केवल जगतको नाश गर्नका निमित्त मात्रै उत्पन्न हुन्छन् ।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वां सद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥१०॥

भा.टी.- अनि मनुष्य दम्भ मान र मदले युक्त भए कुनै प्रकार पनि पूर्ण नहुने कामनाहरुको आशा लिएर फेरि अज्ञानले मिथ्या सिद्धान्तहरु ग्रहण गरी भ्रष्ट आचरणले युक्त भएर संसारमा वर्तन्छ ।

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुमाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥११॥

भा.टी.- अनि ती मरणोपरान्त रहने अनन्त चिन्ताहरुको आश्रय गरेर विषयभोगका भोगमा तत्पर भएका एवं यहि मात्र आनन्द हो भनेर यस्तो मान्नेवाला छन् ।

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥१२॥

भा.टी.-यस निमित्त आशारुपी सैकडौं फाँसी (पाश)हरुमा बाँधिएका फेरि काम र क्रोधमा परायण भएका विषय भोगादिका पूर्तिका लागि अन्यायपूर्वक धनादिक धेरै पदार्थहरुको संग्रह गर्नको चेष्टा गर्दछन् ।

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥१३॥

भा.टी.- अरु ति पुरुषहरुको विचार यस्ता प्रकारको हुन्छ कि मैले आज यो पाएँ अरु यस्तो मनोरथमा प्राप्त हूँला अर्थात यसले यस्तो कार्य गरुला फेरि मेरा साथमा यो यो यति धन छ अरु पनि फेरि कमाउँला र अरु पनि होला यो त सधैका लागि छँदैछ अर्थात रहन्छ ।

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी ॥१४॥

भा.टी.- त्यो शत्रु , मद्वारा मारियो अरु दोस्रा तेस्रा शत्रुहरुलाई पनि म मार्नेछु फेरि मै ईश्वर ऐश्वर्य भोग्ने हूँ , म सबै सिद्धिहरुले युक्त अनि बलवान र सुखी पनि छु ।

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशोमया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥१५॥

भा.टी.- म ठूलो धनवान र ठूलो कुटुम्ब परिवारवाला छु, मेरा समान दोस्रो को , म यज्ञ गरुँला , दान दिउँला , हर्षित खुसी हूँला भन्ने यस्ता प्रकारका अज्ञानले मोहित छन् ।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥१६॥

भा.टी.- यस निमित्त अनेक प्रकारले भ्रमित भएका चित्तवाला अज्ञानीहरु मोहरुपी जालमा फसेका विषय भोगमा अत्यन्त आसक्त भएका ती अपवित्र नर्कमा गएरु गिर्दछन् ।

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥१७॥

भा.टी.- ती आफैंआफ श्रेष्ठ अर्थात आफूलाई नै अत्यन्त श्रेष्ठ मान्ने घमण्डी पुरुषहरु धन र मानका मदले युक्त भएका शास्त्रविधिदेखि रहित खालि नाम मात्रका यज्ञादिद्वारा पाखण्डले यज्ञ गर्दछन् ।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥१८॥

भा.टी.- अनि ति अहंकार, बल, घमण्ड, कामना, र क्रोधादिमा परायण भएर फेरि दोस्राको निन्दा गर्ने पुरुष आफ्ना र दोस्राका शरीरमा बसेका म वासुदेव अन्तर्यामीसँग द्वेष (रीस) गर्नेवाला हुन ।

तानहं द्विषतः क्रुरान् संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥१९॥

भा.टी.- यस्ता ति द्वेष गर्ने पापाचारी र क्रूरकर्मी नराधमहरुलाई म ससारमा बारम्बार आसुरी योनिहरुमा नै गिराईदिन्छु अर्थात सुँगुँर कुकूर आदि नीच योनिहरुमा नै उत्पन्न गराईदिन्छु ।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥२०॥

भा.टी.- यस निमित्त हे अर्जुन ! ति मूढ पुरुष जन्म जन्मान्तरमा पनि आसुरी योनिमा प्राप्त भएर ममा प्राप्त नभै त्यसदेखि पनि अति नीच गतिमा नै प्राप्त हुन्छन् अर्थात घोर नर्कमा गएर गिर्दछन् ।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः कोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥२१॥

भा.टी.- हे अर्जुन ! काम, क्रोध तथा लोभ यि तीन प्रकारका नर्कका द्वार आत्मालाई नाश गर्नेवाला छन् अर्थात अधोगतिमा लैजानेवाला छन् । त्यसकारण यि तीनैलाई त्यागिदिनु असल हुन्छ ।

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततोयाति परां गतिम् ॥२२॥

भा.टी.- किनभने हे अर्जुन ! यि तीनै नर्कका द्वारहरुदेखि मुक्त भएका पुरुष आफ्ना कल्याणको अर्थात आफ्ना भलाई हुने आचरण गर्दछन्, यसले ति परम गतिमा जान्छन् अर्थात मैमा प्राप्त हुन्छन् ।

य: शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारत: ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥२३॥

भा.टी.- जो पुरुष शास्त्रको विधि छाडेर आफ्ना ईच्छाले वर्तन्छ, त्यो न त कुनै सिद्धिमा प्राप्त हुन्छ फेरि न त परम पदमानै तथा न सुखमा नै प्राप्त हुन्छ अर्थात सबैकुरा देखि विमुख भएर अखण्ड द:ख पाउँछ ।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥२४॥

भा.टी. -अत: तिम्रा लागि यो कर्तव्य र अकर्तव्यका व्यवस्थामा शास्त्रै प्रमाण छ भन्ने यस्तो जान । तिमी शास्त्रविधिदेखि नियत गरिएको कर्म गर्नका लागि योग्य छौ ।

ॐ तत्सदित्ति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुसंपद विभागयोगो नाम षोडशोऽध्याय: ॥१६॥

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भगवतगीता

सप्तदशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥१॥

भा.टी:– भगवानका यस्ता वचन सुनेर अर्जुन विन्ति गर्दछन् हे कृष्ण ! जो मनुष्य शास्त्रका विधिलाई छोडी खालि श्रद्धाले युक्त भएर देवताहरुको पूजन गर्दछन् भने तिनको स्थिति फेरि कुन हुन्छ ? ती सात्विकीं हुन् कि राजसी हुन अथवा तामसी हुन् ?

श्रीभगवानुवाच

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्त्विकी राजसी चैव तमसी चेति तां शृणु ॥२॥

भा.टी:– अर्जुनको यस्तो विन्ति सुनेर भगवान श्रीकृष्ण आज्ञा गर्नुहुन्छ हे अर्जुन ! मनुष्यहरुको त्यो विना शास्त्रीय (शास्त्ररहित) संस्कारहरुको केवल स्वभावले उत्पन्न भएका श्रद्धा सात्विकी राजसी र तामसी तीनै प्रंकारको हुन्छ , त्यसको विस्तार तिमी मबाट सुन म सम्पूर्ण भनिदिन्छु ।

सत्त्वानुरुपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं परुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥३॥

भा.टी:– हे भारत ! सबै मनुष्यहरुको श्रद्धा उनका अन्त:करणको अनुरुप हुन्छ फेरि यो पुरुष श्रद्धामय हो , यस निमित्त जो पुरुष जस्तो श्रद्धावाला छ त्यो स्वयं पनि त्यही हो अर्थात जसको जस्तो श्रद्धाभक्ति छ उसको उस्तै स्वरुप पनि छ ।

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसा: ।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जना: ॥४॥

भा.टी:– ती मध्ये सात्विकी पुरुष त देवताहरुको पूजा गर्दछन् , अरु पुरुषहरु यक्ष र राक्षसहरुको पूजन गर्दछन् अरु जो तामसी पुरुषहरु छन् तिनीहरु त प्रेत मसान आदि र भूतणहरुको पूजन गर्दछन् ॥

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जना: ।
दम्भाहंकारसंयुक्ता: कामरागबलान्विता: ॥५॥

भा.टी:– अरु हे अर्जुन ! जो मनुष्य शास्त्रविधिले रहित केवल मनोकल्पित घोर तपस्या गर्दछन् अनि दम्भ र अहंकारले युक्त भएर एवं कामनामा आसक्ति र बलको घमण्डले युक्त भएका छन् ।

कर्षयन्त: शरीरस्थं भूतग्राममचेत: ।
मां चैवान्त: शरीरस्थं तान्विद्धचासुरनिश्चयान्
॥६॥

भा.टी:- फेरि जो शरीररुपले स्थित भूतसमूदायको र अन्त:करणमा स्थित म अन्तर्यामीलाई पनि कृश गर्ने छन् ती अज्ञानीहरुलाई तिमी आसुरी स्वभाववाला हुन् भन्ने जान ।

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥७॥

भा.टी:- हे अर्जुन ! जस्तै श्रद्धा तीन प्रकारको हुन्छ, उस्तै फेरि भोजन पनि आफना आफना प्रकृति अनुसार तीनै प्रकारको प्रिय हुन्छ अरु उस्तै यज्ञ दान र तपादि पनि तीन तीन प्रकारका हुन्छ तिनका यी फरक फरक भेद तिमी मदेखि सुन ।

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः रस्याः ।
स्निग्धाः स्थिराहृद्याआहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥८॥

भा.टी:- आयु, बुद्धि, आरोग्य, सुख र प्रीतिलाई बढाउने अनि रसयुक्त चिल्लो र स्थिर रहने फेरि स्वभावले मनलाई प्रिय लाग्ने यस्तो आहार अर्थात भोजन गर्ने पदार्थ त सात्विकी पुरुषहरुको प्रिय हुन्छ ।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरुक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥९॥

भा.टी:- अरु तीतो अमिलो नूनयुक्त चर्को अत्यन्त तातो तीक्ष्ण रुखो (रस रहित) र दाहकारक अर्थात पोल्ने एवं दुःख चिन्ता र रोगादि उत्पन्न गराउने आहार अर्थात भोजनको पदार्थ राजसी पुरुषहरुलाई प्रिय छ ।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥१०॥

भा.टीः– जो भोजन आधा काँचो आधा पाकेको रसरहित र दुर्गन्धयुक्त ,वासी र जुठो छ फेरि अपवित्र पनि छ यस्तो भोजन तामसी पुरुषहरुलाई प्रिय हुन्छ ।

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥११॥

भा.टीः– अनि हे अर्जुन ! यो यज्ञ शास्त्रविधिले नियत गरिएको छ र गर्नु नै कर्तव्य हो यस्तो मनमा समाधान गरेर फलको इच्छा नगर्ने पुरुषहरुद्वारा गरिन्छ त्यो यज्ञ त सात्विक हो ।

अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥१२॥

भा.टीः– अनि फेरि हे अर्जुन, जुन केवल दम्भाचरणका लागि नै गरिन्छ अर्थात फलको (स्वर्ग प्राप्ति आदिको) उदेश्य राखेर गरिन्छ त्यो यज्ञलाई तिमी राजसी भन्ने जान ।

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥१३॥

भा.टीः– जुन शास्त्रविधिदेखि रहित र अन्नदानदेखि पनि रहित एवं मन्त्रादिदेखि पनि रहित बिना दक्षिणाको र बिना श्रद्धाभक्तिले गरेको यज्ञलाई तिमी तामसी यज्ञ भन्ने जान ।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥१४॥

भा.टीः– हे अर्जुन ! देवता, ब्राह्मण, गुरु र ज्ञानीजनहरुको पूजन एवं पवित्रता , सरलता ,ब्रह्मचर्य, र अहिंसा यी शरीर सम्बन्धी तप भनिन्छन् ।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥१५॥

भा.टीः– फेरि जो उद्वेग नगर्ने प्रिय र हितकारक यथार्थ भाषण छ अरु जो वेद वेदान्त शास्त्रादि पढ्नेको र अनि परमेश्वरका नाम जप्नेको अभ्यास छ त्यो निःसन्देह वाणी सम्बन्धि तप भनिन्छ ।

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धि रित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥१६॥

भा.टीः– मनको प्रसन्नता र शान्त स्वभाव एवं भगवतचिन्तन गर्ने स्वभाव, मनको निग्रह र अन्तःकरणको पवित्रता यस्तो यो मन सम्बन्धि तप भनिन्छ ।

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥१७॥

भा.टी:– तर हे अर्जुन ! फलको इच्छा नगर्ने निष्कामी योगी पुरुषहरुद्वरा अत्यन्त श्रद्धाले गरिएका त्यो पूर्वोक्त तीन प्रकारको तपलाई सात्विक भनिन्छ ।

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥१८॥

भा.टी:– अरु जो तप सत्कार मान र पूजाका लागि वा खालि पाखण्डले नै गरिन्छ, त्यो अनिश्चित र क्षणिक फलवाला तप, यहाँ राजस भनिन्छ ।

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामससुदाहृतम् ॥१९॥

भा.टी:– फेरि जो तप मूढतापूर्वक हठले मन, वांणी र शरीरलाई पीडा दिएर वा दोस्रालाई अनिष्ट गराउनका निमित्त गरिन्छ त्यो तपलाई तामसी तप भनिन्छ ।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥२०॥

भा.टी:– अरु हे अर्जुन ! दान दिनु नै कर्तव्य हो भन्ने यस्ता भावले जो दान देश काल र पात्र मिलेको बेलामां प्रत्युपकार नगर्नेलाई दिईन्छ त्यो दानलाई सात्विक भनिन्छ ।

यत्तुप्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।

दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥२१॥

भा.टीः– अरु जुन दान क्लेशपूर्वक र फेरि प्रत्युपकारका प्रयोजनले वा फलको उदेश्य राखेर जो दान गरिन्छ त्यो दानलाई राजसी दान भनिन्छ ।

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥

भा.टीः– अरु जो दान विना सत्कार पूजा आदि गरी अथवा तिरस्कारपूर्वक (रीस गरेर) अयोग्य देशकालमा कुपुत्रहरुका लागि (जो ब्राह्मण भएर अपठित छ वा दान लिनको अधिकार नभएका अरु जातलाई) दिईन्छ त्यो दानलाई तामसी भनिन्छ ।

ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्रह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुराः ॥२३॥

भा.टीः–अरु हे अर्जुन, ॐ तत् सत् भन्ने यस्तो यो तीन प्रकारको सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको नाम भनिएको छ, , उसैले सृष्टिका आदिकालमा ब्राह्मण र वेद तथा यज्ञादिक रचना गरियो ।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥२४॥

भा.टीः–यस निमित्त वेदको कथन गर्ने श्रेष्ठ पुरुषहरुको शास्त्रविधिले नियत गरिएका यज्ञ , दान र तपस्यारुपी कियाहरु

सदा ॐ यस्ता यी परमात्माका नामको उच्चारण गरेर नै आरम्भ हुन्छ ।

तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतप: किया: ।
दानकियाश्चविविधा: क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभि :॥२५॥

भा.टी:– तत् अर्थात तत् नामले कहिने परमात्माको नै यो सब हो , यस्तो भावले फलको इच्छा नगरेर अनेक प्रकारका यज्ञ तपरुपी कियाहरु र अनि दानरुपी कियाहरु कल्याण चाहने पुरुषहरुद्वारा गरिन्छ ।

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्माणि तथा सच्छब्द: पार्थ युज्यते
॥२६॥

भा.टी:– अरु सत् यो परमात्माको नाम सत्यभावमा र श्रेष्ठ भावमा प्रयोग गरिन्छ , फेरि हे पार्थ , उत्तम कर्ममा पनि सत् शब्दको प्रयोग गरिन्छ ।

यज्ञे तपसि दाने च स्थिति: सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥२७॥

भा.टी:– अनि यज्ञ , तप , र दानमा जो स्थित छ, त्यो पनि सत् हो भन्ने यस्तो भनिन्छ अरु यस परमात्माका निमित्त गरिएको कर्म निश्चयपूर्वक सत् हो भन्ने यस्तो भनिन्छ।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥२८॥

भा.टी:- अरु हे अर्जुन ! विना श्रद्धाले होम गरेको हवन र फेरि दिएको दान एवं तपेको तपस्या र अरु जे पनि गरिएका कर्म छन् ती पनि सम्पूर्ण असत् हुन भन्ने यस्तो भनिन्छ , यस निमित्त यो न त यस लोकमा लाभकारक हुन्छ फेरि न मरेपछि परलोकमा नै लाभकारक हुन्छ , यस निमित्त मनुष्यहरुले यो कर्तव्य गर्नु पर्छ कि सच्चिदानन्दघन परमात्माका नामको निरन्तर चिन्तन गर्दै निष्काम भावले केवल परमेश्वरका लागि शास्त्रविधिले नियत गरिएका कर्महरु परम श्रद्धा र उत्साहका सहित आचरण गर्नु अर्थात ती कर्महरु गर्नु ।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोध्यायः ॥१७॥

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भगवतगीता

अष्टदशोऽध्याय

अर्जुन उवाच

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य चहृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥१॥

भा.टीः- त्यहाँ उप्रान्त फेरि अर्जुन विन्ति गर्छन् हे अन्तर्यामी ! हे वासुदेव ! हे केशिनिषूदन ! अर्थात केशिदैत्यलाई संहार गर्ने, म सन्यास र त्यागको तत्वलाई पृथक पृथक ज़ान्न चाहन्छु ।

श्रीभगवानुवाच

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥२॥

भा.टीः - यस्ता प्रकारका अर्जुनका प्रश्न सुनेर भगवान श्रीकृष्ण आज्ञागर्नु हुन्छ हे अर्जुन ! कति पण्डितजन त काम्य कर्महरुका त्यागलाई सन्यास जान्दछन् । अरु कयौं विचारकुशल पुरुषहरु कर्मका त्यागलाई सन्यास भन्दछन् ।

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥३॥

भा.टी. - एक थरि विद्वान यस्तो भन्दछन् कि कर्म सबै दोषयुक्त छन् यसनिमित्त त्यागनै योग्य छन् अरु दोस्रा विद्वानहरु यस्तो भन्दछन् कि यज्ञदान र तपरुपी कर्म त्याग्न योग्य छैनन् ।

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥४॥

भा.टीः - तर हे भरतसत्तम अर्जुन ! त्यस त्यागका विषयमा तिमी मेरो विचार सुन हे पुरुष श्रेष्ठ ! त्यो त्याग सात्विक राजस र तामस यस्तो तीनै प्रकारको भनिएको छ ।

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥५॥

भा.टीः - यज्ञ दान र तपरुपी कर्म त्याग्न योग्य छैनन् , परन्तु ती निःसन्देह गर्नु कर्तव्य हो किनभने यज्ञ दान र तप यी तीनै बुद्धिमान पुरुषहरुलाई पवित्र गर्ने हुन् ।

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्ग त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मे पार्थनिश्चितं मतमुत्तमम् ॥६॥

भा.टीः - यस निमित्त हे पार्थ ! यी यज्ञ दान तपरुपी कर्म र त्यस्तै अरु पनि सम्पूर्ण श्रेष्ठ कर्महरु आसक्ति र फललाई त्यागेर अवश्य गर्नु पर्छ भन्ने यस्तो मैले निश्चय गरेको उत्तम मत छ ।

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥७॥

भा.टीः - फेरि हे अर्जुन ! नियत कर्म त्याग गर्नु योग्य छैन, यस निमित्त मोहले त्यसको त्याग गर्नु तामसी त्याग भनिएको छ।

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥८॥

भा.टीः - अरु यदि कुनै मनुष्य जो कर्म छ त्यो सबै दुःखरुप हो भन्ने यस्तो सम्झेर शारीरिक क्लेश को भयले कर्महरुलाई त्याग्दछ भने त्यो पुरुष त्यस राजसी त्याग गरेर पनि त्यागका फलमा प्राप्त हुन सक्दैन अर्थात त्यसको त्यो त्याग व्यर्थै हुन्छ।

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं कियतेऽर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विकोमतः ॥९॥

भा.टीः - अनि हे अर्जुन , गर्नु कर्तव्य हो भन्ने यस्तो सम्झेर नै जो शास्त्र विधिले नियत गरिएका कर्तव्य कर्महरुका फलको आशा त्यागेर गरिन्छ त्यो सात्विक त्याग भनिएको छ अर्थात कर्तव्य कर्महरुलाई स्वरुपले नत्यागेर त्यसमा जो आसक्ति र फललाई त्याग्नु छ त्यो सात्विकी त्याग भनिएको छ।

न द्वेष्टयकुशलं कर्म कुशले, नानुषञ्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥१०॥

भा.टीः - अरु हे अर्जुन ! जो पुरुष अकल्याणकारक कर्मदेखि द्वेष गर्दैन अरु कल्याणकारक कर्ममा पनि आसक्त हुँदैन भने त्यो

शुद्ध सत्वगुणले युक्त भएको पुरुष संशयरहित ज्ञानी र त्यागी हो ।

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥११॥

भा.टीः -किनभने देहधारी पुरुषद्धारा सम्पूर्णताले सबै कर्म त्यागनलाई शक्य छैन, यसले जो पुरुष कर्महरुका फलको त्यागी हो त्यै त्यागी हो भन्ने यस्तो भनिएको छ ।

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥१२॥

भा.टीः - सकामी पुरुषहरुका कर्मको नै राम्रो, नराम्रो र मिलेको यस्तो तीन प्रकारको फल मरेपछि पनि हुन्छ , अरु त्यागी पुरुषहरुका कर्महरुका फल कुनै कालमा पनि हुँदैन किनभने तीद्वारा हुने कर्म वास्तवमा कर्म हुदैनन् ।

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धयेसर्वकर्मणाम् ॥१३॥

भा.टीः - हे महाबाहो ! सम्पूर्ण कर्महरुको सिद्धिका निमित्त यी पाँच हेतु सांख्यसिद्धान्तमा भनिएका छन् , तिनलाई तिमीले मदेखि राम्रो गरी जान ।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥१४॥

भा.टी. - हे अर्जुन ! यस विषयमा आधार र कर्ता फरक फरक करण अनेक प्रकारका पृथक पृथक चेष्टा एवं उस्तै नै पाँचौ हेतु दैव भनिएको छ ।

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥१५॥

भा.टी - किनभने मनुष्य मन, वाणी र शरीरले शास्त्रका अनुसार अथवा विपरीत पनि जे कर्म आरम्भ गर्दछ त्यसरी यी पाँचै कारण हुन् ।

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥१६॥

भा.टी. - जुन मनुष्य अशुद्ध बुद्धि भएको कारणले गर्दा शुद्ध स्वरुपद्धारा गरिएको कामद्धारा आत्मालाई नै कर्ता सम्भिन्छ । त्यासैले मन्द बुद्धि भएका अज्ञानिहरु यथार्थ करा बुभ्दैन ।

यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥१७॥

भा.टी. - जो मनुष्यको अन्तःकरणमा म आफू कर्ताको रुपमा छ भन्ने भाव छैन, जो सांसारिक वस्तुमा लेपायमान हुदैंन, त्यो मनष्य यो सब लोकलाई जित्नेवाला वास्तवमा न त उ मर्छ न पापमा बाँधिन्छ ।

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः ॥१८॥

भा. टी:- ज्ञाता, ज्ञान र ज्ञेय यो तीन प्रकारका कर्मलाई प्रेरणा गर्नेवाला हो र कर्ता, कारण र क्रिया यो तीन प्रकारका कर्म संग्रह हो ।

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥१९॥

भा.टी: - ती सबैमा ज्ञान न कर्म तथा कर्ता पनि गुणहरुका भेदले साांख्यशास्त्रमा तीन प्रकारबाट भनिएका छन्, ती पनि तिमी मदेखि सुन ।

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥२०॥

भा.टी: - हे अर्जुन ! जुन ज्ञानले मनुष्य पृथक पृथक सबै भूतहरुमा एकै अविनाशी परमात्मालाई विभागरहित समभावले स्थित भएको देख्दछ , त्यो ज्ञान तिमी सात्विकी जान ।

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥२१॥

भा.टी: -जुन ज्ञान अर्थात जुन ज्ञानद्वारा, मनुष्य सम्पूर्ण भूतहरुमा भिन्न भिन्न प्रकारका अनेक भावहरुलाई भिन्न भिन्नै गरेर जान्दछ, त्यस ज्ञानलाई तिमी राजसी ज्ञान भन्ने जान ।

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥

भा.टी: -अरु जो ज्ञान एकै कार्यरुपी शरीरैमा सम्पूर्णताका सदृश आसक्त छ फेरि जो विनायुक्तिको तत्वज्ञानार्थले रहित र तुच्छ छ भने त्यो ज्ञानलाई तामसी भनिन्छ ।

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥२३॥

भा.टी: - हे अर्जुन ! जुन कर्म शास्त्रविधिले नियत गरिएको र कर्तापनका अभिमानले रहित भै फलको इच्छा नगर्ने पुरुषद्वारा रागद्वेष पनि त्याग गरेको छ भने त्यो कर्म सात्विक भन्ने बुझिन्छ ।

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ।२४॥

भा.टी. - अरु जो कर्म अत्यन्त परिश्रमले युक्त छ फेरि फलको इच्छा गर्न र अहंकारयुक्त पुरुषद्वारा गरिन्छ भने त्यो कर्मलाई राजसी भनिन्छ ,

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारम्यते कर्म यत्तत्तामससमुच्यते ॥२५।

भा.टी: - फेरि जो कर्म परिणाममा हानि अर्थात फलमा हानिहुने हिंसा र सामर्थ्यको विचार नगरेर केवल अज्ञानले आरम्भ गरिन्छ त्यो कर्मलाई तामसी भनिन्छ ।

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्विंत: ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकार: कर्ता सात्विक उच्यते ॥२६॥

भा.टी. - हे अर्जुन ! जो कर्ता आसक्तिले रहित र अहंकारयुक्त वचन नबोल्ने धैर्य र उत्साहले युक्त एवं कार्यको सिद्धि वा असिद्धिमा हर्ष शोकादि विकारहरुले रहित छ भने त्यो कर्ता सात्विकी भनिन्छ ।

रागी कर्म फलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽसुचि: ।
हर्षशोकान्वित: कर्ता राजस: परिकीर्तित: ॥२७॥

भा.टी: - अरु जो आसक्तियुक्त, कर्मका फलको इच्छा गर्ने अनि लोभी छ फेरि दोस्रालाई दु:ख दिने स्वभाववाला अशुद्धाचारी र शोकले लेपायमान भएको, त्यो कर्ता राजस भन्ने बुझिन्छ ।

अयुक्त: प्राकृत:स्तब्ध:शठो नैष्कृतिकोऽलस: ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥२८॥

भा.टी. - फेरि विक्षेपयुक्त चित्तवाला अर्थात चञ्चल चित्तवाला , शिक्षाले रहित , घमण्डी , धुर्त र दोस्राका आजीविकाको नाशक एवं शोक गर्ने स्वभाववाला , आलसी दीर्घसूत्री छ , त्यो कर्ता तामसी भनिन्छ ।

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय ॥२९॥

भा.टी: - हे अर्जुन ! तिमी बुद्धिको र धारणशक्तिको पनि गुणहरुका कारण तीनै प्रकारका भेद सम्पूर्णताले विभागपूर्वक मेरा मुखबाट भनिएको सुन ।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिःसा पार्थ सात्विकी ॥३०॥

भा.टी: - हे पार्थ ! प्रवृत्ति र निवृत्ति मार्गलाई फेरि कर्तव्य र अकर्तव्यलाई एवं भय र अभयलाई तथा बन्ध र मोक्षलाई पनि जुन बुद्धि तत्वदेखि जान्दछ्, त्यो बुद्धि सात्विकी हो ।

यया धर्ममधर्म च कार्य चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिःसा पार्थ राजसी ॥३१॥

भा.टी: - हे अर्जुन ! जुन बुद्धिद्वारा मनुष्य धर्माधर्मको तथा कर्तव्याकर्तव्यको पनि यथार्थ जान्दैन, त्यो बुद्धि राक्षसी हो ।

अधर्म धर्मर्मिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिःसा पार्थ तामसी ॥३२॥

भा.टी: - हे पार्थ ! जो तमोगुणले आवृत भएको बुद्धि. अधर्मलाई धर्म हो भन्ने मान्दछन् , फेरि अरु पनि सम्पूर्ण अर्थहरु विपरीतै मान्दछ, त्यो तामसी बुद्धि हो ।

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिःसा पार्थसात्त्विकी ॥३३॥

भा.टीः -हे अर्जुन ! ध्यानयोगद्वारा जुन अव्यभिचारिणी धारणाले मनुष्य मन, प्राण र इन्द्रियहरुका क्रियादि धारणा गर्दछ , त्यो सात्विकी धारणा हो ,

यया तु धर्मकामार्थान् धृत्वा धारयतेऽर्जुन ।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिःसा पार्थ राजसी ॥३४॥

भा.टीः - अरु हे पृथापुत्र अर्जुन ! फलको इच्छा गर्ने मनुष्य अत्यन्त आसक्तिले जुन धारणाद्वारा धर्म अर्थ कामादिलाई धारण गर्दछ, त्यो धारणा राजसी हो ।

यया स्वप्नं भयं शोकं विषदं मदमेव च
न विमुञ्चतिदुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥३५॥

भा.टीः - हे अर्जुन ! दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य जुन धारणाद्वारा निद्रा ,भय, चिन्ता , दुःख एवं उग्मत्ततालाई पनि छोड्दैन अर्थात धारण गरिरहन्छ भने त्यो तामसी धारणा हो ।

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥३६॥

भा.टीः -हे अर्जुन ! अब तीन प्रकारका सुख पनि तिमी मदेखि सुन हे भरतश्रेष्ठ ! जुन सुखमा साधक पुरुष भजन ध्यान र

वेदादिका अभ्यासले रमण गर्दछ अरु जो दु:खादिका अन्तमा प्राप्त हुन्छ अर्थात जुन साधनाले दु:खरुपी महासागर तरेर पार हुन्छ ।

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥३७॥

भा.टी: - त्यो सुख प्रथम साधनका आरम्भकालमा यद्दपि विषका सदृश भास्तछ तर परिणाममा अमृतका तुल्य छ, यस निम्ति जो भगवत विषयक बुद्धिका प्रसादले उत्पन्न भएको सुख छ त्यो सात्विकी सुख हो ।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥३८॥

भा.टी: - जो सुख विषय र इन्द्रियहरुको संयोगले हुन्छ , त्यो यद्यपि भोगकालका अमृतका सदृश भास्तछ, तर परिणाममा विषय सदृश छ, यस निमित्त त्यो सुख राजसी सुख भनिन्छ ।

यदग्रे चानुबन्धे चं सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥३९॥

भा.टी: - जो सुख भोगकालमा अरु परिणाममा पनि आत्मा मोहाउने हो त्यो निद्रा आलस्य र प्रमाददेखि उत्पन्न भएको सुख तामसी सुख हो ।

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिःस्मात्त्रिभिर्गुणैः ॥४०॥

भा.टी: - फेरि हे अर्जुन ! पृथ्वीमा वा स्वर्गमा अथवा देवताहरुमा यस्तो त्यो कोहि पनि प्राणी छैन कि जो यी प्रकृतिदेखि उत्पन्न भएका तीनै गुणदेखि रहित होस् , किनभने यावनमात्र सर्व जगत गुणमयी मयााकै विकार हो ।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥४१॥

भा.टी: - यस निमित्त हे परंतप ! ब्राह्मण, क्षेत्रिय र वैश्यहरुको फेरि शुद्रहरुको पनि कर्म स्वभावले उत्पन्न भएका गुणहरुले विभक्ति गरिएका छन् अर्थात पूर्वकृत कर्महरुको संस्काररुपी स्वभावदेखि उत्पन्न भएका अनुसार विभक्त गरिएको छ ।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्म कर्म स्वभावजम् ॥४२॥

भा.टी: - तिनमा अन्तःकरणको निग्रह , इन्द्रियादि दमन, बाहिरभित्रको शुद्धि धर्मका लागि कष्ट सहन गर्नु, अरु क्षमाभाव मन , इन्द्रियादि र शरीरको सरलता, आस्तिक बुद्धि, शास्त्र विषयको ज्ञान र परमात्माका तत्वको अनुभव पनि यो त ब्राह्मणको स्वभाविक कर्म हो ।

शौर्य तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभाजम् ॥४३॥

भा.टीः - शूरता, तेजस्विता, धैय, चतुरता र युद्ध अर्थात लडाईमा पनि नभारने स्वभाव अरु फेरि दान र स्वामीभाव यी सबै क्षत्रियका स्वभाविक कर्म हुन् ।

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥४४॥

भा.टीः - खेती गौपालन र क्रय विक्रयरुपी सत्य व्यवहार यी वैश्यका स्वभाविक कर्म हुन् अरु सबै वर्ण अर्थात तीनै वर्ण (ब्राह्मण , क्षत्रिय, वैश्य)का सेवा गर्नु यो शूद्रको पनि स्वभाविक कर्म हो ।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥४५॥

भा.टीः - एवं यी आफ्ना आफ्ना स्वभाविक कर्ममा लागेका मनुष्य भगवतप्राप्ति रुपी परमसिद्धिमा प्राप्त हुन्छन्, तर जस्ता प्रकारले आफ्ना स्वाभाविक कर्ममा लागेका मनुष्य परमसिद्धिमा प्राप्त हुन्छन्, त्यो विधि तिमी मदेखि सुन ।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्यसिद्धिं विन्दति मानव ॥४६॥

भा.टी. - हे अर्जुन ! जुन परमात्मादेखि सबै भूतहरुको उत्पति भएर जसदेखि यो सबै जगत व्याप्त छ त्यस परमात्मालाई आफ्ना स्वाभाविक कर्मद्वारा पूजन गरेर मनुष्यहरु परमसिद्धिमा प्राप्त हुन्छन् अर्थात परमपद लाभ गर्दछन् ।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम् ॥४७॥

भा.टीः - यस निमित्त राम्रा प्रकारले आचरण गरेका दोस्राका धर्मदेखि गुणरहित भए पनि आफ्नै धर्म श्रेष्ठ हो । किनभने स्वभावदेखि नियत गरिएका स्वधर्मरुपी कर्मलाई गरेर नै मनुष्य पापमा प्राप्त हुदैनन् अर्थात तिनलाई पाप लाग्दैन ।

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिमावृताः ॥४८॥

भा.टीः - यसकारण हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! दोषयुक्त नै भएपनि स्वाभाविक कर्म त्याग्नु हुँदैन किनभने धूँवाबाट अग्निका सदृश सबै कर्म कुनै न कुनै दोषले आवृत्त छन अर्थात ढाकिएका छन् ।

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥४९॥

भा.टीः - फेरि हे अर्जुन ! सर्वत्र आसक्ति रहित बुद्धिवाला स्पृहारहित र जितिसकेका अन्त:करणवाला पुरुष सांख्ययोगद्धारा पनि परम नैष्कर्म्य सिद्धि प्राप्त गर्दछन् । अर्थात क्रियारहित शुद्ध सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्माको तत्वरुपी परमसिद्धिमा प्राप्त हुन्छ ।

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोधमे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥५०॥

भा.टी: - यस निमित्त हे कुन्तीपुत्र ! अन्त:करणका शुद्धिरुपी सिद्धि प्राप्त गरेका पुरुष जस्तै सांख्ययोगद्धारा सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममा प्राप्त हुन्छन् फेरि जो तत्वज्ञानको परानिष्ठा छ त्यो पनि तिमी संक्षेपले सुन, म भन्छु ।

बुद्धया विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्यच ॥५१॥
विविक्तसेवी लघ्वासी यतवाक्कायमानस: ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रित: ॥५२॥

भा.टी: - हे अर्जुन ! विशुद्ध बुद्धिले युक्त भएर एकान्त र शुद्ध देशको सेवन गर्ने, मन वाणी र शरीर जितिसकेको अनि दृढ वैराग्यमा राम्रा प्रकारले प्राप्त भैसकेको पुरुष निरन्तर ध्यानयोगमा परायण भएर सात्विक धारणाले अन्त:करणलाई वशमा गरेर फेरि शाब्दिक विषयहरुलाई त्यागेर अरु रागद्वेषादिलाई नष्ट गराएर ।

अहंकारं बलं दर्प कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्मम: शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५३॥

भा.टी: - फेरि अहंकार , बल, घमण्ड, काम, क्रोध र संग्रहलाई त्यागेर ममतारहित र शान्त अन्त:करण भई सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममा एकैभाव हुनका निमित्त योग्य हुन्छ ।

ब्रह्मभूत: प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
सम: सर्वेषु भूतेषु मद्भक्ति लभते पराम् ॥५४॥

भा.टी: - फेरि त्यो सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममा एकैभावले स्थित भएर प्रसन्न चित्त भएको पुरुष न त कुनै वस्तुका लागि शोक गर्छ फेरि न कुनै वस्तुको इच्छा नै गर्दछ , त्यो यस्तै प्रकारले सबै भूतादिमा सम भाव भएर मेरी परा भक्तिमा प्राप्त हुन्छ ।

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
.ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥५५॥

भा.टी: - फेरि त्यसै पराभक्तिद्वारा मेरा तत्व राम्रा प्रकारले जान्दछ जो कि फेरि जुन जस्तो प्रभाववाला हूँ तथा त्यस भक्तिदेखि मलाई तत्वबाट जानेर तत्काले ममा प्रवेश भइ जान्छ अर्थात अनन्यभावले मैमा प्राप्त भै जान्छ । फेरि त्यसका दृष्टिमा म वासुदेवका सिवाय अरु केहि पनि रहँदैन ।

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥५६॥

भा.टी: - ममा परायण भएका निष्काम कर्मयोगी त सम्पूर्ण कर्महरु गर्दागर्दै पनि मेरा कृपाले सनातन अविनाशी परमपदमा प्राप्त हुन्छन् अर्थात मुक्त हुन्छन् ।

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥५७॥

भा.टी: -यस निमित्त हे अर्जुन ! तिमीले सबै कर्महरुलाई मनले ममा अर्पण गरेर मैमा परायण भै समत्वबुद्धिरुपी निष्काम कर्मयोगको अवलम्बन गरेर निरन्तर मैमा चित्तवाला होऊ ।

मच्चित: सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥५८॥

भा.टी: - यस प्रकारले तिमी मैमा निरन्तर मनवाला हुँदा मेरा कृपाले जन्म मृत्यु अदि गरिएका सबै संकटहरुदेखि अनायासै तर्ने छौ अरु यदि अहंकारले मेरा वचन सुनेनौ भन त नष्ट हुनेछौ अर्थात परमार्थ पथदेखि भ्रष्ट हुनेछौ ।

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥५९॥

भा.टी: - अरु जो तिमी अहंकारको अवलम्बन गरेर बस्तैछौ कि म युद्ध गर्दिन , यो तिम्रो निश्चय मिथ्या हो किनभने क्षत्रियपनका स्वभावले तिमीलाई जबर्जस्ती युद्धमा लगाईदिन्छ ।

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तु नेच्छसि यन्मोहात् करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥६०॥

भा.टी: - हे अर्जुन ! जुन कर्मलाई तिमी मोहका वशमा परेर गर्न चाहँदैनौ त्यसलाई पनि आफ्ना पूर्वकृत स्वाभाविक कर्मले बाँधिएका परवश भएर गरौंला ।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारुढानि मायया ॥६१॥

भा.टीः - किनभने हे अर्जुन । शरीररुपी यन्त्रमा आरुढ भएका सम्पूर्ण प्राणीहरुलाई अन्तर्यामी परमेश्वर आफ्ना मायाले तिनका कर्मानुसार भ्रमाएर सबै भूतप्राणीहरुका हृदयमा स्थित छ ।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानंप्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥६२॥

भा.टीः - यस निमित्त हे भारत ! सबै प्रकारले त्यस परमेश्वरको नै अनन्य शरणमा प्राप्त होऊ । त्यस परमात्माका कृपाले परमशान्तिमा र सनातन परमधाममा प्राप्त हौला अर्थात परमधाम प्राप्त गरौला ।

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥६३॥

भा.टीः - यस प्रकार यो गोपनीय भन्दा पनि अति गोपनीय ज्ञान मैले तिम्रा निमित्त भनिदिएँ । यस रहस्ययुक्त ज्ञानको सबैतिरबाट राम्रा प्रकारले विचार गरेर फेरि तिमी जस्तो गर्न चाहन्छौ उस्तै गर अर्थात जस्तो तिम्रो ईच्छा छ उस्तै गर ।

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥६४॥

भा.टीः - यति भन्दा पनि अर्जुनको उत्तर नपाउँदा फेरि भगवान श्रीकृष्ण आज्ञा गर्नुहुन्छ हे अर्जुन ! सम्पूर्ण गोपनीय मेरा परमरहस्ययुक्त वचन तिमी फेरि पनि सुन किनभने तिमी मेरा

अत्यन्त प्रिय छौ यसैले यो परम हितकारक वचन म तिम्रा निमित्त भन्दछु ।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥६५॥

भा.टी: - हे अर्जुन ! तिमी केवल म सच्चिदान्दघन वासुदेव परमात्मामानै अनन्य प्रेमले निरन्तर अचल मनवाला होऊ । म परमेश्वरको नै अतिशय श्रद्धा भक्तिसहित निष्कामभावले नाम गुण र प्रभावको श्रवण, कीर्तन, मनन र पठन पाठनद्धारा निरन्तर भजन गर्नेवाला होऊ । फेरि मेरा (शङ्ख, चक्र, गधा, पद्म र किरीट कुण्डल आदि भूषणहरुले युक्त पिताम्बर वनमाला कौस्तुभ मणिआदि विष्णुको) मन, वाणी र शरीरद्धारा सर्वस्व अर्पण गरेर अतिशय श्रद्धा भक्ति र प्रेमले विह्वलतापूर्वक पूजन गर्नेवाला होऊ, अरु फेरि म सर्वशक्तिमान् विभूति बल, ऐश्वर्य, माधुर्य गम्भीरता, उदारता, वात्सल्यता र सुहृदता आदि गुणहरुले सम्पन्न सबैका आश्रयरुपी वासुदेवलाई विनयभावपूर्वक भक्ति सहित साष्टाङ्ग दण्डवत प्रणाम गर । यस्तो गर्नाले तिमी मैमा प्राप्त हुनेछौ , तिम्रा निमित्त म सत्य प्रतिज्ञा गर्दछु किनभने तिमी मेरा अत्यन्यै प्रिय साथी हौ ।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥६६॥

भा.टी: - यस निमित्त सर्व धर्महरुका अर्थात सम्पूर्ण कर्मादिका आश्रयलाई त्यागेर केवल एकै म वासुदेव सच्चिदानन्दघन

परमात्माको नै अनन्य शरणमा प्राप्त होऊ । म तिमीलाई सम्पूर्ण पापदेखि मुक्त गराईदिन्छु । तिमी कत्ति पनि शोक नगर ।

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥६७॥

भा.टीः -हे अर्जुन ! यस्ता प्रकारले तिम्रा निमित्त भनिएका यस गीतारुपी परमरहस्यको केहि कालमा पनि न त तपरहित मनुष्यका सामुन्ने भन्न योग्य हुन्छ, न त भक्तिरहितका सामुन्ने फेरि सुन्नको ईच्छा नगर्नेवालाका सामुन्ने पनि भन्नु योग्य हुन्छ एवं जो मेरो निन्दा गर्छ त्यसका सामुन्ने पनि भन्नु ठिक हुँदैन तर जसमा यो सबै दोष छैन भने यस्ता भक्तका सामुन्ने प्रेमपूर्वक उत्साह सहित भन्न योग्य हुन्छ ।

य इमं परमं गुह्य मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥६८॥

भा.टीः -किनभने जो पुरुष ममा परमप्रेम पूर्वक यस परमरहस्य युक्त गीताशास्त्रलाई मेरा भक्तहरुका सामुन्ने भन्ला त्यो पुरुष निःसन्देह ममा प्राप्त होला अर्थात परम पदरुपी मेरो स्वरुप प्राप्त गरेर जीवनमुक्त होला ।

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥६९॥

भा.टी: - अरु न त त्यसदेखि बढेर अतिशय प्रियकार्यवाला मनुष्यहरुमा कोही छ , अरु फेरि त्यसदेखि ठुलो पृथ्वीमा मेरो अत्यन्त प्यारो दोस्रो कोही होला ।

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥७०॥

भा.टी: - फेरि हे अर्जुन ! जुन पुरष यस धर्ममय हामी दुईको सम्वादरुपी गीताशास्त्र पढोस् अर्थात नित्य पाठ गरोस् त्यसद्वारा म ज्ञानयज्ञले पूजित हुन्छु भन्ने यस्तो मेरो मत छ ।

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपिमुक्तःशुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥७१

भा.टी: - फेरि जो पुरुष श्रद्धायुक्त र दोषदृष्टिले रहित भएर यो गीताशास्त्रको श्रवण मात्रै पनि गरेछ भने त्यो पुरुष पापदेखि मुक्त भएर उत्तम कर्म गर्नेवालाहरु मध्यमा पनि त्यो श्रेष्ठ लोकमा प्राप्त हुनेछ अर्थात स्वर्गादि उत्तम लोकमा वास हुन्छ ।

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ॥७२॥

भा.टी: - यस्ता प्रकारले गीताको महात्म्य भनेर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दले फेरि अर्जुनसँग सोध्न लागे हे पार्थ । के यी मेरा वचनहरु तिमी एकाग्र चित्त गरेर सुन्यौ ? हे धनञ्जय । के तिम्रा अज्ञानदेखि उत्पन्न भएका मोहहरु सबै नष्ट भए ?

<u>अर्जुन उवाच</u>

नष्टो मोहःस्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥७३॥

भा.टीः - यस्ता प्रकारले जब भगवान्‌ले सोध्नुभएको थियो तब अर्जुन पनि विन्ती गर्न लागे हे अच्युत ! हजुरका कृपाले मेरो मोह नष्ट भयो फेरि मेरो स्मृति (ज्ञान) पनि प्राप्त भयो यसैले म सन्देहरहित भई बसेको छु । म अब हजुरको आज्ञा पनि पालन गर्दछु अर्थात यद्ध गर्दछु ।

संजय उवाच

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥७४॥

भा.टीः - सञ्जय भन्दछन् कि हे राजन ! यस्ता प्रकारका मैले श्रीवासुदेव र महात्मा अर्जुनको यो अदभूत रहस्ययुक्त र रोमाञ्चकारक संवाद सुने ।

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतःस्वयम् ॥७५॥

भा.टीः - श्रीव्यासजीका कृपाले दिव्यदृष्टिद्वारा मैले यस परम रहस्ययुक्त गोपनीय योग साक्षात भन्न लागेका स्वयं योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवानदेखि सुने ।

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥७६॥

भा.टीः - यस निमित्त हे राजन ! श्रीकृष्ण भगवान र अर्जुनका यस रहस्ययुक्त कल्याणकारक र अद्भूत संवाद फेरि फेरि स्मरण गरेर म बारम्बार हर्षित हुन्छु ।

तच्चसंस्मृत्य संस्मृत्य रुपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान्राजन् हृष्यामि च पनः पुनः ॥७७॥

भा.टीः - हे राजन ! श्रीहरिका त्यस अति अद्भूत रुपको पनि पुनः पुनः अर्थात फेरि फेरि स्मरण गरेर मेरा चित्तमा महान आश्चर्य हुन्छ । म बारम्बार हर्षित भैरहेको छु ।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥७८॥

भा.टीः - हे राजन ! विशेष के भनूँ जहाँ योगेश्वर कृष्ण भगवान हुनुहुन्छ अरु फेरि जहाँ गाण्डिवधारी अर्जुन छन् त्यही श्री, विजय, विभूति र अचल नीति छ भन्ने यस्तो मेरो मत छ ।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसन्यासयोगो नाम अष्टदशोऽध्यायः ॥१८॥

विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात् ।
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥
नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभृते ।
अनेकरुपरुपाय विष्णवे प्रभविष्णवे ॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा धर्मानशेषेण पावनानि च सर्वशः ।
युधिष्ठिरः शान्तनवं पुनरेवाभ्यभाषत ॥।

युधिष्ठिर उवाच

किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम् ।
स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ॥।

को धर्मः सर्वधर्माणामं भवतः परमो मतः ।
किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥।

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम् ।
स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः ॥।

तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम् ।
ध्यायन्स्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च ॥।

अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम् ।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥

ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्तिवर्धनम् ।
लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम् ॥

एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः ।
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा ॥

परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः ।
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम् ॥

पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता ॥

यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे ।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ॥

तस्य लोकप्रधानस्य जगन्नाथस्य भूपते ।
विष्णोर्नामसहस्रं मे श्रृणु पापभयापहम् ॥

यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः ।
ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये ॥

॥ श्री विष्णु सहस्रनाम स्तोत्रम् ॥

विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः ।
भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ॥ १ ॥
पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमा गतिः ।
अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च ॥ २ ॥
योगो योगविदां नेता प्रधानपुरुषेश्वरः ।
नारसिंहवपुः श्रीमान् केशवः पुरुषोत्तमः ॥ ३ ॥
सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः ।
संभवो भावनो भर्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः ॥ ४ ॥
स्वयंभूः शम्भुरादित्यः पुष्कराक्षो महास्वनः ।
अनादिनिधनो धाता विधाता धातुरुत्तमः ॥ ५ ॥
अप्रमेयो हृषीकेशः पद्मनाभोऽमरप्रभुः ।
विश्वकर्मा मनुस्त्वष्टा स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः ॥ ६ ॥
अग्राह्यः शाश्वतः कृष्णो लोहिताक्षः प्रतर्दनः ।
प्रभूतस्त्रिककुब्धाम पवित्रं मङ्गलं परम् ॥ ७ ॥

ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः ।

हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवो मधुसूदनः ॥ ८ ॥

ईश्वरो विक्रमी धन्वी मेधावी विक्रमः क्रमः ।

अनुत्तमो दुराधर्षः कृतज्ञः कृतिरात्मवान् ॥ ९ ॥

सुरेशः शरणं शर्म विश्वरेताः प्रजाभवः ।

अहः संवत्सरो व्यालः प्रत्ययः सर्वदर्शनः ॥ १० ॥

अजः सर्वेश्वरः सिद्धः सिद्धिः सर्वादिरच्युतः ।

वृषाकपिरमेयात्मा सर्वयोगविनिःसृतः ॥ ११ ॥

वसुर्वसुमनाः सत्यः समात्माऽसम्मितः समः ।

अमोघः पुण्डरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृतिः ॥ १२ ॥

रुद्रो बहुशिरा बभ्रुर्विश्वयोनिः शुचिश्रवाः ।

अमृतः शाश्वतस्थाणुर्वरारोहो महातपाः ॥ १३ ॥

सर्वगः सर्वविद्भानुर्विष्वक्सेनो जनार्दनः ।

वेदो वेदविदव्यङ्गो वेदाङ्गो वेदवित् कविः ॥ १४ ॥

लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षः कृताकृतः ।

चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः ॥ १५ ॥

भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता सहिष्णुर्जगदादिजः ।
अनघो विजयो जेता विश्वयोनिः पुनर्वसुः ॥ १६ ॥
उपेन्द्रो वामनः प्रांशुरमोघः शुचिरूर्जितः ।
अतीन्द्रः संग्रहः सर्गो धृतात्मा नियमो यमः ॥ १७ ॥
वेद्यो वैद्यः सदायोगी वीरहा माधवो मधुः ।
अतीन्द्रियो महामायो महोत्साहो महाबलः ॥ १८ ॥
महाबुद्धिर्महावीर्यो महाशक्तिर्महाद्युतिः ।
अनिर्देश्यवपुः श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृक् ॥ १९ ॥
महेष्वासो महीभर्ता श्रीनिवासः सतां गतिः ।
अनिरुद्धः सुरानन्दो गोविन्दो गोविदां पतिः ॥ २० ॥
मरीचिर्दमनो हंसः सुपर्णो भुजगोत्तमः ।
हिरण्यनाभः सुतपाः पद्मनाभः प्रजापतिः ॥ २१ ॥
अमृत्युः सर्वदृक् सिंहः सन्धाता सन्धिमान् स्थिरः ।
अजो दुर्मर्षणः शास्ता विश्रुतात्मा सुरारिहा ॥ २२ ॥
गुरुर्गुरुतमो धाम सत्यः सत्यपराक्रमः ।
निमिषोऽनिमिषः स्रग्वी वाचस्पतिरुदारधीः ॥ २३ ॥

अग्रणीर्ग्रामणीः श्रीमान् न्यायो नेता समीरणः ।
सहस्रमूर्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ २४ ॥
आवर्तनो निवृत्तात्मा संवृतः संप्रमर्दनः ।
अहः संवर्तको वह्निरनिलो धरणीधरः ॥ २५ ॥
सुप्रसादः प्रसन्नात्मा विश्वधृग्विश्वभुग्विभुः ।
सत्कर्ता सत्कृतः साधुर्जह्नुर्नारायणो नरः ॥ २६ ॥
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा विशिष्टः शिष्टकृच्छुचिः ।
सिद्धार्थः सिद्धसंकल्पः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः ॥ २७ ॥
वृषाही वृषभो विष्णुर्वृषपर्वा वृषोदरः ।
वर्धनो वर्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः ॥ २८ ॥
सुभुजो दुर्धरो वाग्मी महेन्द्रो वसुदो वसुः ।
नैकरूपो बृहद्रूपः शिपिविष्टः प्रकाशनः ॥ २९ ॥
ओजस्तेजोद्युतिधरः प्रकाशात्मा प्रतापनः ।
ऋद्धः स्पष्टाक्षरो मन्त्रश्चन्द्रांशुर्भास्करद्युतिः ॥ ३० ॥
अमृतांशूद्भवो भानुः शशबिन्दुः सुरेश्वरः ।
औषधं जगतः सेतुः सत्यधर्मपराक्रमः ॥ ३१ ॥

भूतभव्यभवन्नाथः पवनः पावनोऽनलः ।
कामहा कामकृत्कान्तः कामः कामप्रदः प्रभुः ॥ ३२ ॥
युगादिकृद्युगावर्तो नैकमायो महाशनः ।
अदृश्यो व्यक्तरूपश्च सहस्रजिदनन्तजित् ॥ ३३ ॥
इष्टोऽविशिष्टः शिष्टेष्टः शिखण्डी नहुषो वृषः ।
क्रोधहा क्रोधकृत्कर्ता विश्वबाहुर्महीधरः ॥ ३४ ॥
अच्युतः प्रथितः प्राणः प्राणदो वासवानुजः ।
अपांनिधिरधिष्ठानमप्रमत्तः प्रतिष्ठितः ॥ ३५ ॥
स्कन्दः स्कन्दधरो धुर्यो वरदो वायुवाहनः ।
वासुदेवो बृहद्भानुरादिदेवः पुरन्दरः ॥ ३६ ॥
अशोकस्तारणस्तारः शूरः शौरिर्जनेश्वरः ।
अनुकूलः शतावर्तः पद्मी पद्मनिभेक्षणः ॥ ३७ ॥
पद्मनाभोऽरविन्दाक्षः पद्मगर्भः शरीरभृत् ।
महर्द्धिरृद्धो वृद्धात्मा महाक्षो गरुडध्वजः ॥ ३८ ॥
अतुलः शरभो भीमः समयज्ञो हविर्हरिः ।
सर्वलक्षणलक्षण्यो लक्ष्मीवान् समितिञ्जयः ॥ ३९ ॥

विक्षरो रोहितो मार्गो हेतुर्दामोदरः सहः।

महीधरो महाभागो वेगवानमिताशनः ॥ ४० ॥

उद्भवः क्षोभणो देवः श्रीगर्भः परमेश्वरः।

करणं कारणं कर्ता विकर्ता गहनो गुहः ॥ ४१ ॥

व्यवसायो व्यवस्थानः संस्थानः स्थानदो ध्रुवः।

परर्द्धिः परमस्पष्टस्तुष्टः पुष्टः शुभेक्षणः ॥ ४२ ॥

रामो विरामो विरजो मार्गो नेयो नयोऽनयः।

वीरः शक्तिमतां श्रेष्ठो धर्मो धर्मविदुत्तमः ॥ ४३ ॥

वैकुण्ठः पुरुषः प्राणः प्राणदः प्रणवः पृथुः।

हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नो व्याप्तो वायुरधोक्षजः ॥ ४४ ॥

ऋतुः सुदर्शनः कालः परमेष्ठी परिग्रहः।

उग्रः संवत्सरो दक्षो विश्रामो विश्वदक्षिणः ॥ ४५ ॥

विस्तारः स्थावरस्थाणुः प्रमाणं बीजमव्ययम्।

अर्थोऽनर्थो महाकोशो महाभोगो महाधनः ॥ ४६ ॥

अनिर्विण्णः स्थविष्ठोऽभूर्धर्मयूपो महामखः।

नक्षत्रनेमिर्नक्षत्री क्षमः क्षामः समीहनः ॥ ४७ ॥

यज्ञ इज्यो महेज्यश्च क्रतुः सत्रं सतां गतिः ।
सर्वदर्शी विमुक्तात्मा सर्वज्ञो ज्ञानमुत्तमम् ॥ ४८ ॥
सुव्रतः सुमुखः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदः सुहृत् ।
मनोहरो जितक्रोधो वीरबाहुर्विदारणः ॥ ४९ ॥
स्वापनः स्ववशो व्यापी नैकात्मा नैककर्मकृत् ।
वत्सरो वत्सलो वत्सी रत्नगर्भो धनेश्वरः ॥ ५० ॥
धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी सदसत्क्षरमक्षरम् ।
अविज्ञाता सहस्रांशुर्विधाता कृतलक्षणः ॥ ५१ ॥
गभस्तिनेमिः सत्त्वस्थः सिंहो भूतमहेश्वरः ।
आदिदेवो महादेवो देवेशो देवभृद्गुरुः ॥ ५२ ॥
उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः ।
शरीरभूतभृद्भोक्ता कपीन्द्रो भूरिदक्षिणः ॥ ५३ ॥
सोमपोऽमृतपः सोमः पुरुजित्पुरुसत्तमः ।
विनयो जयः सत्यसंधो दाशार्हः सात्त्वतांपतिः ॥ ५४ ॥
जीवो विनयितासाक्षी मुकुन्दोऽमितविक्रमः ।
अम्भोनिधिरनन्तात्मा महोदधिशयोऽन्तकः ॥ ५५ ॥

अजो महार्हः स्वाभाव्यो जितामित्रः प्रमोदनः ।

आनन्दो नन्दनो नन्दः सत्यधर्मा त्रिविक्रमः ॥ ५६ ॥

महर्षिः कपिलाचार्यः कृतज्ञो मेदिनीपतिः ।

त्रिपदस्त्रिदशाध्यक्षो महाशृङ्गः कृतान्तकृत् ॥ ५७ ॥

महावराहो गोविन्दः सुषेणः कनकाङ्गदी ।

गुह्यो गभीरो गहनो गुप्तश्चक्रगदाधरः ॥ ५८ ॥

वेधाः स्वाङ्गोऽजितः कृष्णो दृढः संकर्षणोऽच्युतः ।

वरुणो वारुणो वृक्षः पुष्कराक्षो महामनाः ॥ ५९ ॥

भगवान् भगहाऽऽनन्दी वनमाली हलायुधः ।

आदित्यो ज्योतिरादित्यः सहिष्णुर्गतिसत्तमः ॥ ६० ॥

सुधन्वा खण्डपरशुर्दारुणो द्रविणप्रदः ।

दिवःस्पृक् सर्वदृग्व्यासो वाचस्पतिरयोनिजः ॥ ६१ ॥

त्रिसामा सामगः साम निर्वाणं भेषजं भिषक् ।

संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा शान्तिः परायणम् ॥ ६२ ॥

शुभाङ्गः शान्तिदः स्रष्टा कुमुदः कुवलेशयः ।

गोहितो गोपतिर्गोप्ता वृषभाक्षो वृषप्रियः ॥ ६३ ॥

अनिवर्ती निवृत्तात्मा संक्षेप्ता क्षेमकृच्छिवः।
श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीपतिः श्रीमतांवरः ॥ ६४ ॥
श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः।
श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीमाँल्लोकत्रयाश्रयः ॥ ६५ ॥
स्वक्षः स्वङ्गः शतानन्दो नन्दिर्ज्योतिर्गणेश्वरः।
विजितात्माऽविधेयात्मा सत्कीर्तिश्छिन्नसंशयः ॥ ६६ ॥
उदीर्णः सर्वतश्चक्षुरनीशः शाश्वतस्थिरः।
भूशयो भूषणो भूतिर्विशोकः शोकनाशनः ॥ ६७ ॥
अर्चिष्मानर्चितः कुम्भो विशुद्धात्मा विशोधनः।
अनिरुद्धोऽप्रतिरथः प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः ॥ ६८ ॥
कालनेमिनिहा वीरः शौरिः शूरजनेश्वरः।
त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशवः केशिहा हरिः ॥ ६९ ॥
कामदेवः कामपालः कामी कान्तः कृतागमः।
अनिर्देश्यवपुर्विष्णुर्वीरोऽनन्तो धनंजयः ॥ ७० ॥
ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद् ब्रह्मा ब्रह्म ब्रह्मविवर्धनः।
ब्रह्मविद् ब्राह्मणो ब्रह्मी ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः ॥ ७१ ॥

महाक्रमो महाकर्मा महातेजा महोरगः ।
महाक्रतुर्महायज्वा महायज्ञो महाहविः ॥ ७२ ॥
स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोत्रं स्तुतिः स्तोता रणप्रियः ।
पूर्णः पूरयिता पुण्यः पुण्यकीर्तिरनामयः ॥ ७३ ॥
मनोजवस्तीर्थकरो वसुरेता वसुप्रदः ।
वसुप्रदो वासुदेवो वसुर्वसुमना हविः ॥ ७४ ॥
सद्गतिः सत्कृतिः सत्ता सद्भूतिः सत्परायणः ।
शूरसेनो यदुश्रेष्ठः सन्निवासः सुयामुनः ॥ ७५ ॥
भूतावासो वासुदेवः सर्वासुनिलयोऽनलः ।
दर्पहा दर्पदो दृप्तो दुर्धरोऽथापराजितः ॥ ७६ ॥
विश्वमूर्तिर्महामूर्तिर्दीप्तमूर्तिरमूर्तिमान् ।
अनेकमूर्तिरव्यक्तः शतमूर्तिः शताननः ॥ ७७ ॥
एको नैकः सवः कः किं यत्तत् पदमनुत्तमम् ।
लोकबन्धुर्लोकनाथो माधवो भक्तवत्सलः ॥ ७८ ॥
सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी ।
वीरहा विषमः शून्यो घृताशीरचलश्चलः ॥ ७९ ॥

अमानी मानदो मान्यो लोकस्वामी त्रिलोकधृक् ।

सुमेधा मेधजो धन्यः सत्यमेधा धराधरः ॥ ८० ॥

तेजोवृषो द्युतिधरः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।

प्रग्रहो निग्रहो व्यग्रो नैकशृङ्गो गदाग्रजः ॥ ८१ ॥

चतुर्मूर्तिश्चतुर्बाहुश्चतुर्व्यूहश्चतुर्गतिः ।

चतुरात्मा चतुर्भावश्चतुर्वेदविदेकपात् ॥ ८२ ॥

समावर्तोऽनिवृत्तात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः ।

दुर्लभो दुर्गमो दुर्गो दुरावासो दुरारिहा ॥ ८३ ॥

शुभाङ्गो लोकसारङ्गः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः ।

इन्द्रकर्मा महाकर्मा कृतकर्मा कृतागमः ॥ ८४ ॥

उद्भवः सुन्दरः सुन्दो रत्ननाभः सुलोचनः ।

अर्को वाजसनः शृङ्गी जयन्तः सर्वविज्जयी ॥ ८५ ॥

सुवर्णबिन्दुरक्षोभ्यः सर्ववागीश्वरेश्वरः ।

महाह्रदो महागर्तो महाभूतो महानिधिः ॥ ८६ ॥

कुमुदः कुन्दरः कुन्दः पर्जन्यः पावनोऽनिलः ।

अमृतांशोऽमृतवपुः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः ॥ ८७ ॥

सुलभः सुव्रतः सिद्धः शत्रुजिच्छत्रुतापनः ।

न्यग्रोधोऽदुम्बरोऽश्वत्थश्चाणूरान्ध्रनिषूदनः ॥ ८८ ॥

सहस्रार्चिः सप्तजिह्वः सप्तैधाः सप्तवाहनः ।

अमूर्तिरनघोऽचिन्त्यो भयकृद्भयनाशनः ॥ ८९ ॥

अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो गुणभृन्निर्गुणो महान् ।

अधृतः स्वधृतः स्वास्यः प्राग्वंशो वंशवर्धनः ॥ ९० ॥

भारभृत् कथितो योगी योगीशः सर्वकामदः ।

आश्रमः श्रमणः क्षामः सुपर्णो वायुवाहनः ॥ ९१ ॥

धनुर्धरो धनुर्वेदो दण्डो दमयिता दमः ।

अपराजितः सर्वसहो नियन्ताऽनियमोऽयमः ॥ ९२ ॥

सत्त्ववान् सात्त्विकः सत्यः सत्यधर्मपरायणः ।

अभिप्रायः प्रियार्होऽर्हः प्रियकृत् प्रीतिवर्धनः ॥ ९३ ॥

विहायसगतिर्ज्योतिः सुरुचिर्हुतभुग्विभुः ।

रविर्विरोचनः सूर्यः सविता रविलोचनः ॥ ९४ ॥

अनन्तो हुतभुग्भोक्ता सुखदो नैकजोऽग्रजः ।

अनिर्विण्णः सदामर्षी लोकाधिष्ठानमद्भुतः ॥ ९५ ॥

ात्सनातनतमः कपिलः कपिरव्ययः । ॥ ९६ ॥

स्तिदः स्वस्तिकृत्स्वस्ति स्वस्तिभुक्स्वस्तिदक्षिणः

ौद्रः कुण्डली चक्री विक्रम्यूर्जितशासनः ।

ब्दातिगः शब्दसहः शिशिरः शर्वरीकरः ॥ ९७ ॥

क्रूरः पेशलो दक्षो दक्षिणः क्षमिणांवरः ।

द्वत्तमो वीतभयः पुण्य श्रवणकीर्तनः ॥ ९८ ॥

ारणो दुष्कृतिहा पुण्यो दुःस्वप्ननाशनः ।

हा रक्षणः सन्तो जीवनः पर्यवस्थितः ॥ ९९ ॥

न्तरूपोऽनन्तश्रीर्जितमन्युर्भयापहः ।

ुरश्रो गभीरात्मा विदिशो व्यादिशो दिशः ॥ १०० ॥

ादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः सुवीरो रुचिराङ्गदः ।

नो जनजन्मादिर्भीमो भीमपराक्रमः ॥ १०१ ॥

धारनिलयोऽधाता पुष्पहासः प्रजागरः ।

र्वगः सत्पथाचारः प्राणदः प्रणवः पणः ॥ १०२ ॥

ाणं प्राणनिलयः प्राणभृत्प्राणजीवनः ।

वं तत्त्वविदेकात्मा जन्ममृत्युजरातिगः ॥ १०३ ॥

भूर्भुवः स्वस्तरुस्तारः सविता प्रपितामहः ।
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः ॥ १०४ ॥
यज्ञभृद् यज्ञकृद् यज्ञी यज्ञभुग् यज्ञसाधनः ।
यज्ञान्तकृद् यज्ञगुह्यमन्नमन्नाद एव च ॥ १०५ ॥
आत्मयोनिः स्वयंजातो वैखानः सामगायनः ।
देवकीनन्दनः स्रष्टा क्षितीशः पापनाशनः ॥ १०६ ॥
शङ्खभृन्नन्दकी चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ।
रथाङ्गपाणिरक्षोभ्यः सर्वप्रहरणायुधः ॥ १०७ ॥

इतीदं कीर्तनीयस्य केशवस्य महात्मनः ।
नाम्नां सहस्रं दिव्यानामशेषेण प्रकीर्तितम् ॥१०८॥

य इदं श्रृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत् ।नाशुभं
प्राप्नुयातिंञ्चिसोऽमुत्रहे च मानवः ॥१०९॥

वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात्क्षत्रियो विजयी भवेत् ।
वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥११०॥

धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात् ।
कामानवाप्नुयात्कामी प्रजार्थी प्राप्नुयात्प्रजाम् ॥१११॥

भक्तिमान्यः सदोत्थाय शुचिस्तदगतमानसः ।
सहस्रं वासुदेवस्य नाम्नामेतत्प्रकीर्तयेत् ॥११२॥

यशः प्राप्नोति विपुलं ज्ञातिप्रधान्यमेव च ।
अचलां श्रियमाप्नोति श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥११३॥

न भयं क्वचिदाप्नोति वीर्यं तेजश्च विन्दति ।
भवत्यरोगो द्युतिमान्बलरुपगुणान्वितः ॥११४॥

रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः ॥११५॥

दुर्गाण्यतितरत्याशु पुरुषः पुरुषोत्तमम् ।
स्तुवन्नामसहस्रेण नित्यं भक्तिसमन्वितः ॥११६॥

वासुदेवश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥११७॥

न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नैवोपजायते ॥११८॥

इमं स्तवमधीयानः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।
युज्येतात्मसुखक्षन्ति श्रीधृततिस्मृतिकीर्तिभिः ॥११९॥

न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नशुभा मतिः ।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां पुरुषोत्तमे ॥१२०॥

द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा खं दिशो भूर्महोदधिः ।
वासुदेबस्य वीर्येण विधृतानि महात्मनः ॥१२१॥

ससुरासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ।
जगद्वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम् ॥१२२॥

इन्द्रियाणिमनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः ।
वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च ॥१२३॥

सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते ।
आचारप्रभोवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥१२४॥

ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः ।
जंगमाजंगमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम् ॥१२५॥

योगो ज्ञानं तथा सांख्यं विद्याः शिल्पादि कर्म च ।
वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत्सर्वं जनार्दनात् ॥१२६॥

एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः ।
त्रींल्लोकांन्व्यप्यभूतात्मा भुङ्क्तेविश्वभुगव्ययः ॥१२७॥

इमं स्तवं भगवतो विष्णुर्व्यासेन कीर्तितम् ।
पठेद्य इच्छेत्पुरुषः श्रेयः प्राप्तुं सुखानि च ॥१२८॥

विश्वेश्वरमजं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् ।
भजन्ति ये पुष्कराक्षं न ते यान्ति पराभावम् ॥१२९॥

ॐ तत्सदिति श्रीमहाभारते शतसहस्त्या संहितयां
वैयासिक्यामानुशासनिके पर्वणि भीष्मयुधिष्ठिरसंवादे
श्रीविष्णोर्दिव्यसहस्रनामस्तोत्रम् ॥

॥ ॐ ॥

॥ इति श्री विष्णु सहस्त्रनाम स्तोत्रम् सम्पूर्णम् ॥

श्रीबादरायणिरुवाच ।।

एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि
जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम ।।

श्रीगजेन्द्र उवाच ।।

ओं नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ।।

यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम
योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम ।।

यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम
अविद्धदृक्साक्ष्युभयं तदीक्षते स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ।।

कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु
तमस्तदासीद्गहनं गभीरं यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः ।।

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदुर्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ।।

दिदृक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः
चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ।।

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा न नामरूपे गुणदोष एव वा
तथापि लोकाप्ययसम्भवाय यः स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ।।

तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये
अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ।।

नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ।।

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता
नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ।।

नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे
निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च ।।

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे
पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ।।

सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे
असता च्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ।।

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय निष्कारणायाद्भुतकारणाय
सर्वागमाम्नायमहार्णवाय नमोऽपवर्गाय परायणाय ।।

गुणारणिच्छन्नचिदुष्मपाय तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय
नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागम स्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि ।।

मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय
स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ।।

आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तैर्दुष्प्रापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय
मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ।।

यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति
किं चाशिषो रात्यपि देहमव्ययं करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम ।।

एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ।।

तमक्षरं ब्रह्म परं परेशमव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूरमनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ।।

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः
नामरूपविभेदेन फल्ग्व्या च कलया कृताः ।।

यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो निर्यान्ति संयान्त्यसकृत्स्वरोचिषः
तथा यतोऽयं गुणसम्प्रवाहो बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ।।

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्न स्त्री न षण्ढो न पुमान्न जन्तुः
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्निषेधशेषो जयतादशेषः ।।

जिजीविषे नाहमिहामुया किमन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या
इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवस्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम ।।

सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम
विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम ।।

योगरन्धितकर्माणो हृदि योगविभाविते
योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम ।।

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेग शक्तित्रयायाखिलधीगुणाय
प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ।।

नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याहंधिया हतम
तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम ।।

श्रीशुक उवाच ।।

एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषंब्रह्मादयोविविधलिङ्गभिदाभिमानाः
नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वाततत्राखिलामरमयोहरिराविरासीत ।।

तं तद्वदार्तमुपलभ्य जगन्निवासःस्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः
छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमानश्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः ।।

सोऽन्तःसरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रान नारायणाखिलगुरो भगवन्नमस्ते
।।

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार
ग्राहाद्विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं संपश्यतां हरिरमूमुचदुच्छ्रियाणाम ।।

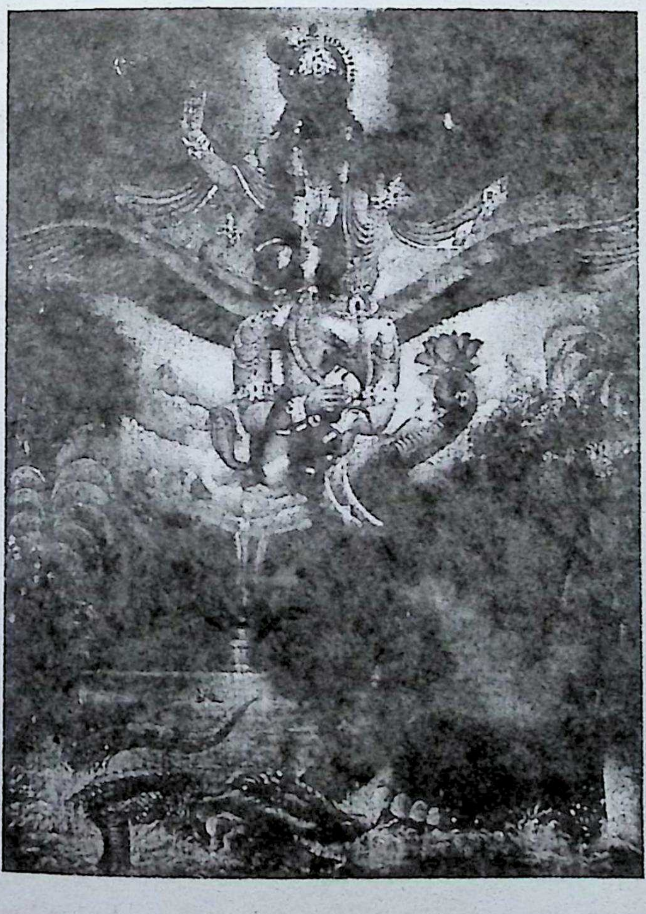

श्रीमद्भगवद्गीता अत्यन्त छोटो समयमा प्रकाशन कार्य सम्पन्न गर्नु परेको र टाईप गर्दा केहि अशुद्धि हुन गएको पाईएकोले शुद्ध गरी पारायण हुन विशेष अनुरोध छ ।

शुद्धिपत्र

अध्याय	श्लोक	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	-	१०	-------------	सञ्जय उवाच(थप गर्ने)
१	७	२	संज्ञार्थ	संज्ञार्थं
१	१५	५	महाशङ्ख	महाशङ्खं
१	२०	११	व्यवस्तितान्	व्यवस्थितान्
१	२०	१३	हृषीशं	हृषीकेशं
१	२८/२९	१६	दृष्टेवमं	दृष्ट्वेमं
१	३७	२	स्यम	स्याम
२	-	३	द्बितियोऽध्याय	द्वितियोऽध्याय
२	-	९	----------	अर्जुन उवाच(थप गर्ने)
२	६	११	चैतद्विव:	चैतद्विद्म:
२	६	१२	यध्दा	यद्वा
२	७	२१	धर्मसंमूढाचेता:	धर्मसंमूढचेता:
२	८	४	ममापनुद्या	ममापनुद्याद्
२	८	५	यच्छोकमुच्छोषणाभि -न्द्रियाणाम्	यच्छोकमुच्छोषणमि- न्द्रियाणाम्
२	८	७	राज्यां	राज्यं
२	-	५	-----------	श्रीभगवानुवाच(थप गर्ने)

२	१३	१९	देहान्तरप्रसिर्धीरस्तत्र	देहान्तरप्रासिर्धीरस्तत्र
२	१८	६	नित्यस्योक्तः	नित्यस्योक्ताः
२	२१	४	कथ	कथं
२	२२	९	वसांसि	वासांसि
२	२९	१२	कश्विदेन	कश्चिदेन
२	२९	१३	मश्चर्य..	माश्चर्य..
२	३१	६	विकपितुमर्हसि	विकंपितुमर्हसि
२	३३	१६	ऋथ	अथ
२	३३	१६	धर्म्य	धर्म्यं
२	३४	५	सम्भानितस्य	संम्भावितस्य
२	३५	११	भूल्वा	भूत्वा
२	३६	१६	सामर्थ्य	सामर्थ्यं
२	३७	२०	स्वर्ग	स्वर्गं
२	३९	१२	वुध्दाया	वुध्दया
२	४४	१६	नयापहृतचेतसाम्	तयापहृतचेतसाम्
२	-	१७	....	श्रीभगवानुवाच(थप गर्ने)
२	५६	६	स्थितिधीर्मुः	स्थितधीर्मुनिरुच्यतेः
२	५९	४	रसवर्ज	रसवर्जं
२	६०	९	परुषस्य	पुरुषस्य
२	६५	१५	सर्वदुःखनां	सर्वदुःखानां
२	६५	१६	... सोह्यशु	... सोह्याशु
३	१	६	तत्कि	तत्किं
३	२	१३	व्यमिश्रेणैव	व्यामिश्रेणैव
३	-	१९	....	श्रीभगवानुवाच(थप गर्ने)
३	४	५	नैष्कर्म्य	नैष्कर्म्यं
३	११	६	भावयातानेन	भावयतानेन
३	१७	१	यस्त्वान्मरतिरेव	यस्त्वात्मरतिरेव
३	२१	५	करुते	कुरुते

३	२२	९	किचन	किञ्चन
३	२७	२०	गुणौः	गुणैः
४	-	१३	....	श्रीभगवानुवाच(थप गर्ने)
४	६	२०	अजोऽपिसन्नव्यात्मा	अजोऽपिसन्नव्ययात्मा
४	११	७	प्रद्यन्ते	प्रपद्यन्ते
४	१२	१३	सिद्धि	सिद्धिं
४	१३	२०	चातुर्वर्ण्य	चातुर्वर्ण्यं
४	३५	१७	द्रक्ष्यस्मात्मन्यथो	द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो
५	२	१३	कर्मसन्यासात्कर्म-यागो	कर्मसन्यासात्कर्मयोगो
५	२०	१	नोव्दिजेप्प्राप्य	नोद्विजेत्प्राप्य
५	२५	१६	छिह्रन्नद्वैधा	छिन्नद्वैधा
५	२६	३	कामक्रोधवियुक्तनां	कामक्रोधवियुक्तानां
६	-	२	श्रीमदभगवतगीता	श्रीमद्भगवद्गीता
६	-	४	भगवानुवाच	श्रीभगवानुवाच
६	१	५	कार्य	कार्यं
६	१	६	ससंन्यासी	ससन्न्यासी
६	९	१९	सृहृन्मित्रा	सुहृन्मित्रा ...
६	१७	४	युक्तहारविहारस्य	युक्ताहारविहारस्य
६	२८	८	यञ्जन्नेवं	युञ्जन्नेवं
६	-	९	भगवानुवाच	श्रीभगवानुवाच
६	४४	१७	ह्मियते	ह्रियते
७	-	२	श्रीमदभगवतगतो	श्रीमद्भगवद्गीता
७	-	४	भगवानुवाच	श्रीभगवानुवाच
७	४	६	प्रकृतीरष्टाधा	प्रकृतिरष्टधा
७	५	१०	प्रकृतीं	प्रकृतिं
७	११	६	वलावतां	वलवतां
७	१५	१३	मययापहृतज्ञाना	माययापहृतज्ञाना
७	१७	१	एकभक्तिविशिष्यते	एकभक्तिर्विशिष्यते
७	२६	१७	समततीनि	समतीतानि

८	-	२	श्रीमद्भगवतगती	श्रीमद्भगवद्गीता
८	३	१९	भूतभावोद्भकारो	भूतभावोद्भवकरो
८	११	१५	वतेरागाः	वीतरागाः
८	११	१६	ब्रह्मचर्य	ब्रह्मचर्यं
८	१७	१३	... ब्रह्मणे विदुः	... ब्रह्मणो विदुः
८	१७	१४	रात्रि	रात्रिं
८	२०	१६	भूतेयु	भूतेषु
८	२७	१	जानन् योगी	जानन्योगी
९	-	२	श्रीमद्भगवतगीता	श्रीमद्भगवद्गीता
९	-	४	भगानुवाच	श्रीभगानुवाच
९	३	१६	अश्रद्धानाः	अश्रद्दधानाः
९	४	३	सर्व	सर्वं
९	४	४	तेष्यवस्थितः	तेष्ववस्थितः
९	९	११	निवध्नवन्ति	निवध्नन्ति
९	१३	१४	भजन्त्यनन्मनसो	भजन्त्यनन्यमनसो
९	१८	५	शरणां	शरणं
९	२०	१९	देवभागेन	देवभोगान्
९	२२	१४	अनत्याश्चिन्तयन्तो	अनन्याश्चिन्तयन्तो
१०	५	९	यशोयशः	यशोऽयशः
१०	६	१४	इमाःप्रज्ञा	इमाःप्रजा
१०	–	१०	अजुनवाच	अर्जुनवाच
१०	१९	१३	कुरुश्रेण्ठ	कुरुश्रेष्ठ
१०	२६	१२ः	गनधर्वाणां	गन्धर्वाणां
१०	३३	१०	अक्षराणामकारोऽमि	अक्षराणामकारोऽस्मि
१०	३६	१०	तेजस्तेजस्तेस्विनाम्	तेजस्तेजस्विनामहम्
११	२	१२	माहात्म्यपि	माहात्म्यमपि
११	३	१६	परमेशवरं	परमेश्वरं
११	४	३	द्रटुमिति	द्रष्टुमिति
११	–	९	भगवानुवाच	श्रीभगवानुवाच
११	६	१५	पश्यदित्या ...	पश्यादित्या...
११	६	१६	वहुन्यद्दृष्टपूर्वाणि	वहुन्यदृष्टपूर्वाणि
११	७	४	यच्चान्यद्द्रष्नुमिच्छसि	यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि
११	११	७	दव्यमाल्यम्वरधरं	दिव्यमाल्याम्वरधरं

११	१३	१९	तत्रैकस्थ	तत्रैकस्थं
११	१४	६	हृष्तरोमा	हृष्टरोमा
११	१८	२०	सनातास्त्वं	सनातनस्त्वं
११	२४	१३	शमं विष्णो	शमं च विष्णो
११	२५	१९	दृष्ट्वै	दृष्टवैव
११	२६	७	भष्म	भिष्म
११	२९	१०	चाशाय	नाशाय
११	३१	६	नमौऽस्तु	नमोऽस्तु
११	३३	६	निहित:	निहता:
११	३४	१४	व्यथिष्टा युध्यस्व	व्याथिष्टा
११	३४	१५	...जेतासि	युध्यस्व जेतासि
११	४२	२१	यच्चावहासार्थमसत्कृताऽसि	यच्यावहासार्थमसत्कृतोऽसि
११	४२	१	एकाऽथवाप्पच्युत	एकोथऽवाप्यच्युत
११	४३	१०	कुताऽन्यो	कुतोऽन्यो
११	४५	५	अदृष्टपूर्व	अदृष्टपूर्वं
११	४५	५	हृषिताऽस्मि	हृषितोऽस्मि
११	४९	२	रुप	रूपं
११	४९	२	घोरमीद्दङ्ममेदम्	घोरमीदृङममेदम्
११	५०	१३	भुत्वा	भूत्वा
११	५२	६	सदुर्दर्शमिदं	सुदुर्दर्शमिदं
१२	-	३	द्वादशोदध्याय	द्वादशोऽध्याय
१२	५	१३	गतिर्दु:ख	गतिर्दुखं
१२	५	१३	देहवदिभ्दरवाप्यते	देहवभ्दिरवाप्यते
१२	९	१३	शक्रोषि	शक्नोषि
१२	१७	२	भक्तिमान	भक्तिमान्य:
१३	-	४	भगवानुवाच	श्रीभगवानुवाचं
१३	२	१२	यत्ततज्ज्ञानं	यत्तज्ज्ञानं
१३	२३	१८	भूयोऽभिजाहते	भूयोऽभिजायते
१३	३१	२	करोति लिप्यते	करोति न लिप्यते
१४	-	४	श्रीभगवनुवाच	श्रीभगवानुवाच
१४	२२	१३	प्रवर्ति	प्रवृतिं
१५	२	१३	अधश्चोर्ध्व	अधश्चोर्ध्वं
१६	९	१	द्दष्टिभवष्टभ्य	द्दष्टिमवष्टभ्य

१६	११	१३	प्रलयान्तामुमाश्रिताः	प्रलयान्तामुपाश्रिताः
१६	१३	५	माम्स्ये	प्राप्स्ये
१७	३	२०	परषो	पुरुषो
१७	६	१७	भूतग्राममचेत	भूतग्राममचेतसः
१७	८	१०	... रस्या	रस्या स्निग्धा
१७	१८	५	चलमधुवम	चलमध्रुवम्
१७	२३	१२	ब्रह्मणास्तेन	ब्राह्मणास्तेन
१८	५	९	त्याज्यै	त्याज्यं
१८	१०	१६	नानुषञ्जतें	नानुषज्जते
१८	२५	१७	मोहादारम्यते	मोहादारभ्यते
१८	३१	११	धर्ममधर्म	धर्ममधर्मं
१८	३१	११	कार्य	कार्यं
१८	३२	१५	अधर्म	अधर्मं
१८	३५	११	विषदं	विषादं
१८	४०	२०	स्मात्त्रिभिर्गुणैः	स्यात्त्रिभिर्गुणैः
१८	४६	१९	स्वभाजम्	स्वभावजम्
१८	४८	८	धूमेनाग्निरिमावृताः	धूमेनाग्निरिवावृताः
१८	५३	१५	दर्प	दर्पं
१८	५६	१२	मद्व्यपाश्रयः	मद्व्यपाश्रयः
१८	७७	७	पनः	पुनः

ामनगर, चक्रचोक, सुन्दरीघाट, ललितपुर-३

केन्द्रिय कार्यालय

मुख्य शाखा, नगरकोट

लेखक परिचय

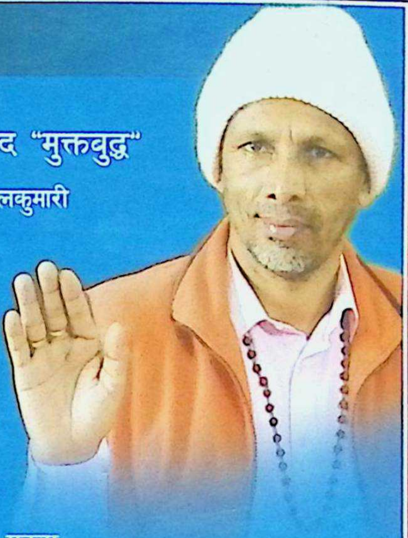

नाम : परमहंस आचार्य योगिराज वालकृष्णानन्द "मुक्तवुद्ध"

आगमन (जन्म) : पिता वलराम र करुणाकी मूर्ति माता कमलकुमारी
देवीको गर्भवाट वि.स.२०१० मा ।

विशेषता :

वाल्यावस्थादेखि नै प्रभुप्रति प्रेम, सद्भाव, इमान्दारी र मृदुता

१८ वर्षको कलिले उमेरमा व्रह्मज्ञान, ईश्वर साक्षात्कार तथा सिद्धि प्राप्त

दीनदुःखी असहाय र असक्तहरुको लागि सेवा, सत्कार तथा दानको लागि सदैव तत्पर

परोपकार, परकल्याण र परहितमा समर्पित

सरलता, दया, करुणा र प्रेमभावले युक्त व्यक्तित्व

अथाह ज्ञान, स्वस्थ जीवनयापनको तरीका र साधनाकलाका स्रोत

लगातार वाह्र घण्टासम्म एकै थलोमा रही वेदान्त, श्रीमद्भगवद्गीता , श्रीमद्भागवत महापुराण जस्ता विधामा धाराप्रवाह प्रवचन दिन सक्षम

प्राकृतिक, आयुर्वेदीय एवं दैवी चिकित्सा तथा ज्योतिषविद्या र योगका विशेषज्ञ

सानो, ठुलो , धनी, गरीव र जातपातको क्षेत्रमा निष्पक्षता र समभावमा रमाउने

वात्सल्यपूर्ण व्यवहार, चमत्कारी स्पर्श र गम्भीर परामर्श जस्ता पद्धतिद्वारा असाध्य रोगीहरुलाई नवजीवन, तत्वज्ञानका पिपासुहरुलाई वोध तथा शान्त र सुखी परिवारको सञ्चालन रहस्यका दाता